प्रकाशक
नवयुग ग्रन्थ कुटीर
कोट गेट, बीकानेर-334 001 (राज०)

प्रथम संस्करण : फरवरी 1992

मूल्य : 120/-

मुद्रक : सुपर ऑफसेट प्रिन्टर्स,
ईस्ट रोहतास नगर, शाहदरा, दिल्ली-32

DIVYACHARYA (EPIC) By: MAHAMAHOPADHYAYA MANAK CHAN
RAMPURIA,
PUBLISHER : NAVAYUGA GRANTHA KUTEER,
KOTE GATE, BIKANER-334 001 (RAJASTHAN),
FIRST EDITION; FEBRUARY 1992,
PRICE Rs. 120/=
PRINTER : Super Offset Printers,
East Rohtas Nagar, Shahdara, Delhi-32.

अनुक्रमणिका

समर्पण।

दिव्याचार्य तुम्हारी महिमा—
कैसे किसे सुनाएँ ?
वाणी में वह शक्ति भला हम—
किंचन कैसे पाएँ ?
फिर भी जो कुछ मन में मेरे—
भजन-भाव की भाषा
सफल करो हे श्रमण गौरव
वंदन-शुभ अभिलाषा

—माणकचंद रामपुरिया

शत-शत वन्दन/नमन ! !

"दिव्याचार्य" आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है ! परम पूज्य आचार्य श्री नाना लाल जी महाराज सा. का जीवन एक ज्वलन्त आदर्श का प्रतीक है ! उनकी परम सिद्ध जीवन-ज्योति को काव्यमय रूप देने का यह प्रयास उनके प्रति हृदय की भक्ति और प्रणति का ही साकार स्वरूप है ।

प्रस्तुत कृति में जिनेश्वर भगवान् द्वारा उपदिष्ट यथासंभव जिन सूत्रों का ही यथा साध्य विवेचन है, एवं अष्टाचार्यों की जीवन-झाँकी का भी अवलोकन सहज सम्भव है । फलस्वरूप ग्रन्थ की भाव-प्रेषणीयता विशद् धरातल पर रूपायित एवं प्रतिफलित हो सकी है ।

श्रमण-गौरव आचार्य श्री नाना लाल जी महाराज सा. के जीवन-जलज तक आकर पुस्तक परिसमाप्ति की सीमा पर है । ज्योतिर्मय आचार्य श्री की जीवन-ज्योति की ज्योत्स्ना से रचना आद्यान्त अनुप्राणित एवं आलोकित है । ज्योति-शिखर आचार्य श्री अनन्त श्री विभूषित और अनन्त गणों के अक्षय-निधि तथा अलौकिक गुणों के लिए चिर स्मरणीय है । उनका पर्याप्त दिग्दर्शन कराना प्रस्तुत पुस्तक का वांछित अंश है ।

साथ ही निवेदन है कि मेरे हृदय की यह कुसुमाञ्जलि, आचार्य श्री के पावन पद-पद्मों पर श्रद्धा सहित समर्पित है ।

श्रमण-धर्म के आस्थावान श्रद्धालु भक्तों को इससे किञ्चित-मात्र भी आनन्दानुभूति उपलब्ध हुई तो मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा । "धर्मो रक्षति रक्षितः ।"

–माणक चंद रामपुरिया

दिव्याचार्य

(महाकाव्य)

प्रथम पुष्प

जयति जिनेश्वर ! तेरी महिमा—
जन-जन प्रतिपल गाते;
विमल साधना-पथ पर चलकर
जीवन सुखद बनाते;

भरत-भूमि की धरती पावन-
सब दिन जगती रहती;
कण-कण से है श्रमण सुगतिमय-
संस्कृति धारा वहती;

इसी भूमि पर तप कर भटकी-
आत्मा उन्नत होती;
कलुष मिटाकर साधन-जल से-
सब दिन आनन धोती;

इसी भूमि पर तीर्थंकर-गण-
आ-आकर हैं रमते;
भुवन भास्कर बन कर तम में-
रहते सदा चमकते;

जब-जब पापाचार बढ़ा है-
धरती है अकुलाई;
तब-तब आत्मजयी विज्ञों ने-
राह विमल दिखलाई;

कठिन साधना-व्रत पर चलकर-
जीवन सुखमय होता;
जनम-जनम के पापों को नर-
श्रम-सीकर से धोता;

अपना ही श्रम परम श्रेष्ठ है-
जीवन का उद्धारक;
प्राप्त इसी से प्रभु-पद होता-
कहते सभी विचारक;

नर में ही देवत्व छिपा है-
अन्तरतर में झाँको;
किसी मनुज को किसी देव से-
कण भर कम मत आँको;

साधन ही है मूल कि जिस पर-
सब व्यक्तित्व खड़ा है;
कठिन तपस्या साधन से ही
होता मनुज बड़ा है;

जिसने श्रम का लिया सहारा-
उसने पंथ बनाया;
मकर-उरग से भरे सिन्धु को-
पार वही कर पाया;

यह संसार विशद सागर है-
अगम अथाह भयंकर
मोह-द्रोह के भँवर-जाल हैं-
इसके कदम-कदम पर;

बड़ा कठिन है पार उतरना-
इससे बाहर आना;
महागर्त के पाप-पंक से-
अपना बदन बचाना;

गिरकर मानव महा अतल में-
रहता सदा भटकता;
परम अपावन घोर ऐपणा-
में ही प्राण अटकता;

यहीं मनुज की पशुता जगकर
उसको सदा सताती;
यहाँ पहुँचकर आत्मा क्षण भर-
चैन न लेने पाती;

हर क्षण मानव तड़प रहा है-
कैसे बाहर आए ?
महाकाल-विकराल-दंष्ट्र से-
कैसे प्राण बचाए ?

जिसे कदाचित कभी भँवर में-
ज्योति-पुरुष मिल जाते;
उसको सब कुछ मिलता, उसके-
सुमन स्वतः खिल जाते;

सब कुछ ही है प्राप्य मनुज को-
फिर भी भटक रहा है;
नयन-नयन से अनजाने ही-
अविरल अश्रु बहा है;

जहाँ गेह में विपुल अन्न का-
हो भण्डार सुसज्जित;
सब कुछ रहते वहाँ अगर हो-
मनुज क्षुधा से पीड़ित;

तो यह उसका कठिन भाग्य है-
कौन उसे बतलाए ?
उसकी क्षुधा मिटाने को फिर-
साधन कौन जुटाए ?

मानव तन है श्रेष्ठ कि इससे-
सब साधन हो सकते;
इस तन से ही जनम-जनम के-
पाप मनुज धो सकते;

किन्तु जहाँ है तिमिर वहाँ पर-
तनिक रोशनी आए;
कोई दिव्य-पुरुष ही नर को
उसकी राह बताए;

तभी मनुज जग सकता भव में-
उसे त्राण मिल सकता;
पंकज-सा वह पंकिल भू पर-
खुल-खुल कर खिल सकता;

सब साधन हैं सुलभ मनुज को-
कुछ भी कमी नहीं है;
ज्योति-पुरुष जो राह दिखाए
वह भी पास यहीं है;

उनकी ही हम चरण-शरण में-
आत्म-समर्पित करके;
करते हैं हम ज्योति याचना-
अश्रु नयन में भर के;

बड़ा सुखद क्षण है जीवन का-
किसको कौन पुकारे ?
पूज्यपाद आचार्य प्रवर हैं-
श्री नानेश पधारे;

जय तीर्थंकर ! जयति जिनेश्वर !
भव का दुःख मिटाओ;
जन-मानस का तिमिर मिटाकर-
जगमग जग कर जाओ !

द्वितीय पुष्प

आज विश्व में घिरा चतुर्दिक-
कैसा घना कुहासा;
दिग्-दिगन्त तक दिखता केवल-
उठता धुँआ-धुँआ-सा;

मनुज मनुज में घृणा-द्रोह है-
पापाचार बढ़ा है;
आत्म-दाह का आज भयंकर
सब पर नशा चढ़ा है;

भरत-भूमि थी एक तपोवन-
पावन शोभाशाली;
यहीं प्रथम उतरी थी किरणें-
ज्ञान जगानेवाली;

दुनिया जब थी लिप्त पाप में-
पुण्य यहाँ था जागा;
पशुता का सब भाव मनुज ने-
प्रथम यहीं था त्यागा;

भू पर मनुज नहीं था नर-सा-
पशु-सा ही था रहता;
खुले गगन के नीचे ही हिम-
आतप-वर्षा सहता;

नोंच-खसोंट मची थी भू पर
अलग-थलग थे प्राणी;
धरती के इस पुण्य-पुत्र को-
मिली नहीं थी वाणी;

नग्न विचरते क्षुधा-काय के-
केवल दास बने थे;
मानव-संज्ञा के भी निर्मम-
तम परिहास बने थे;

मानव थे पर मानव के गुण-
जागे नहीं अभी थे;
नर होकर भी पशुता से ये-
नीचे अभी सभी थे;

अलग-अलग टुकड़ों में बँटकर-
जीवन यापन करते;
अन्य वन्य जीवों के सँग ही-
वन में सदा विचरते;

तन पर हो परिधान, न इसका-
कुछ भी ज्ञान उन्हें था;
सिद्ध भोज्य है ग्राह्य, न इसका-
तिलभर भान उन्हें था;

शब्द-अर्थ थे मूक, नहीं थी-
उनकी कोई भाषा;
उनके दृग से झाँक रही थी-
केवल घनी निराशा;

तम की थी सब ओर कालिमा-
धरती थी अकुलाई;
ऐसे में ही आदिनाथ ने-
निर्मल ज्योति जगाई;

सकल भोग भूमिज गति थिति से-
नर को सहज उबारा;
और कर्म भूमिज जीवन का-
सबको दिया सहारा;

मानव में मानवता जागी-
मिली मूक को वाणी;
नर ने फिर पहचानी अपनी-
शक्ति अतुल कल्याणी;

ग्रहण हेतु फिर सिद्ध पाक को-
सबने ही अपनाया;
अपने श्रम से रेत-खेत पर-
अन्न विपुल उपजाया;

छिन्न-भिन्न सब शक्ति मनुज की-
एक बिन्दु पर आई;
श्रम की नव मर्यादा जागी-
समता पड़ी दिखाई;

पुण्य पंथ भागी नर में-
मानवता मुस्काई;
नयी सभ्यता, नव संस्कृति की-
नयी शिखा लहराई;

यह निर्ग्रन्थ श्रमण-संस्कृति है-
सभी तरह सुखकारी;
शुद्ध सत्व का तत्त्व यहाँ है-
निर्मल गुण अविकारी;

साधु-पंथ है यही कि जिस पर-
मानव बढ़ता आया;
इसी राह पर पुण्य-जिनेश्वर
ने है दीप जलाया;

इसी दीप के नव प्रकाश में-
हम सब जीवन जीते;
परम पूज्य के वचनामृत को-
मुग्ध हृदय से पीते;

जयति जिनेश्वर ! पूजनीय पद-
पर हम मस्तक धरते;
कष्ट मिटे जन-जन हो निर्भय-
पूजन-अर्चन करते ! !

तृतीय पुष्प

पावन संस्कृति के विकास का
योग नया फिर आया
नव आलोक हृदय-मानस में-
जन-जन के लहराया;

तृतीय पुष्प

पावन संस्कृति के विकास का
योग नया फिर आया
नव आलोक हृदय-मानस में-
जन-जन के लहराया;

एक नया ही क्षितिज खुला फिर—
नई प्रेरणा आई;
लगी विहंसने मानव-मन में-
ऊषा की अरूणाई;

यह था नया विकास मनुज का-
जीवन का नव उद्‌भव;
यहीं पहुंच कर मानव-मन का-
साज हुआ था सम्भव;

पहले केवल काम-क्षुधा की-
ही जलती थी ज्वाला;
इसके आगे कदम-कदम पर-
छाया था अंधियाला;

लेकिन अब तो मानव दृग ने-
नयी विभा थी पाई;
पत्थर तक को भी तराश कर-
उसने मूर्ति बनाई;

यही प्रगति का नया कदम था-
नव जीवन का द्योतक;
नयी चेतना का अनुरंजन-
जड़ता का परिशोधक;

पिंजड़े के बन्दी खग को अव-
नव आकाश मिला था;
जीवन के सौन्दर्य-ज्ञान का-
नव विश्वास मिला था;

नव प्रकाश लहराया दृग में-
नूतन लाली छाई;
लगे झांकने मधुप बाग में-
कलियों की तरूणाई;

अब तक तो थी क्षुधा-काम की-
तृप्ति मात्र आवश्यक;
इसके आगे की किरणों का-
मनुज नहीं था पोपक;

इसके आगे भी कुछ होता-
जान नहीं था पाया;
तन की किसी सिरा में कोमल-
भाव नहीं था आया;

अब जब नव आलोक जगा था-
तन में सिहरन आई;
अनायास मन पुलक उठा था-
लख कर निज परिछाई;

चित्र अनेकों चित्रित करके-
मानव ने सुख पाया;
तृप्त हृदय का नव उद्भावन-
जीवन ने दिखलाया;

तरह-तरह की कृतियों का अब-
नव उद्भास हुआ था;
भाव विभव के आलोड़न का-
नव आभास हुआ था;

कला सहज जीवन में आई-
कोमल हुआ हृदय था;
जड़ता में चेतनता का यह-
मंगलमयी उदय था;

अब तो सब कुछ सरस हुआ था-
सरस हुई थी धरती;
कोने-कोने फूल खिले थे
रही न वसुधा परती;

पहले पहल जगा था मन में-
सुषमा का आकर्षण;
दृग के आगे हुआ प्रथम ही-
रूप-राशि-सम्वर्षण;

अव तो सव कुछ बदल गया था-
बदली जीवन धारा;
लगा ढूंढने मानव मन-से-
शीतल कूल-किनारा;

नई-नई अव कला जगी थी-
नई रागिनी आई;
दिशा-दिशा में डाल-डाल पर
कली-कली मुस्काई;

अब तो ऊषा लगी झांकने-
रूप सलोना धर कर;
द्रुम-दल तक को लगी सजाने-
नभ से स्वयं उतर कर;

दिव की नव आभा सजती थी-
कण-कण पर अनजाने;
पत्ती-पत्ती तक जग-जग कर-
लगती गीत सुनाने;

संध्या भी अब उतर धरा पर-
आती थी इठलाती;
नभ की तारावलियों में भी-
रजनी थी मुस्काती;

पहले जो उद्विग्न मनुज था-
शान्त हुआ अब मन से;
था उचाट जो हृदय वहां अब-
राग जगा जीवन से;

यह परिवर्तन नयी विभा थी-
आदिनाथ थे दाता;
उस आदर्श अनादि जिनेश्वर-
सम्मुख शीश नवाता;

परम्परा है वही कि जिस पर-
आज यहां हम आए;
परम पूज्य नानेश-चरण में-
बैठे शीश नवाए;

जय तीर्थंकर ! पुनः विश्व में-
परम ज्योति फैला दो;
नयी विभा में जागें हम सब-
मन का तिमिर मिटा दो ! !

चतुर्थ पुष्प

जीवन है निर्झर का पानी-
प्रतिपल आगे बढ़ता;
बाधाओं की चट्टानों को-
तोड़ सुगम पथ गढ़ता

कहीं अचल पत्थर हो लेकिन-
निर्झर कभी न रुकता;
विघ्नों की दीवारों के भी-
सम्मुख कभी न झुकता;

बढ़ना इसकी गति है, इसको-
कब बाधा मिल पाई;
दुर्गमतम प्रत्यूह हटाकर-
इसने राह बनाई;

एक दिवस जो शैल श्रृंग से-
पतली धार चली थी;
सघन विपिन के शून्य प्रान्त से-
जो धारा निकली थी;

पथ पर कितने झाड़ी-झुरमुट-
विघ्न अनेकों आए;
पत्थर के ढोके भी आकर-
पग-पग पर टकराए;

कितनों ने घेरा था इसको-
पत्थर कठिन बिछाकर;
कुछ ने चाहा, रक्खें इसको-
अपने पास छिपाकर;

झाड़ी-झुरमुट के बाड़ों से-
बहुतों ने था बांधा;
रुका न पलभर बढ़ता आया-
पंथ स्वयं ही साधा;

विकट पहाड़ी पथ से नीचे-
जब समतल पर आया;
तब भी इसको कठिन परिस्थिति-
ने ही सदा सताया;

नगर-डगर के उद्यम कितने-
इसे रोकने आए;
पथ में कितने फूल विहंसकर-
इसको थे भरमाए;

किन्तु कहीं भी रुका नहीं यह-
अब तक बढ़ता आया;
इस निर्झर ने अपना पथ है-
अपने स्वयं बनाया;

समतल पर तो कितने आए-
धोने अपनी चादर;
कितने आए यही सोच कर-
भर लें अपनी गागर;

निर्झर है गतिमान सभी की-
मैल निरंतर धोता;
यहां पहुंच कर हर प्यासे का-
सफल मनोरथ होता;

निर्झर की जो पतली धारा-
विपिनांचल से आई;
पाट उसी का विशद रूप धर-
पड़ता अब दिखलाई;

आज अनेकों तीर्थ खड़े हैं-
इसके कूल-किनारे;
इसके जल में झांक रहे हैं-
सूरज-चांद-सितारे;

तरह-तरह के फूल विहंस कर-
सब का हृदय लुभाते;
सतत्-चिरंतन इस धारा को-
कोई बांध न पाते;

प्यासी दुनिया इसके तट पर-
आकर प्यास बुझाती;
इसके शीतल जल से जीवन-
का सब ताप मिटाती;

यही श्रमण-संस्कृति है जिसकी-
कभी क्षीण थी धारा;
फूट रहा इस सागर से अब-
रत्नों का फव्वारा;

तीर्थ वही तीर्थंकर हैं जो-
श्रम की महिमा गाते;
मानव को ही परम अलौकिक-
पद तक खुद पहुंचाते;

आत्मा ही विश्वात्मा बनती-
तथ्य यही है निश्चल;
यही जिनेश्वर ने बतलाया-
जीवन का क्रम अविरल;

अपने श्रम से ही मानव जब-
उन्नत भव को पाता;
तभी सकल संसार-मोह का-
बन्धन सब कट जाता;

उसी रूप में पूज्यपाद-
आचार्य प्रवर हैं आए;
तृषित-व्यथित मानव-मन कैसे-
उनकी महिमा गाए ?

जयति जिनेश्वर ! गहन तिमिर का-
अन्त आप अब कर दें;
ज्ञान-किरण के नव प्रकाश से-
मानव का मन भर दें ! !

पंचम् पुष्प

नयी किरण जब आती है तब-
धरती पुलकित होती;
कली-कली तक विहंस-विहंस कर-
शबनम से मुंह धोती;

दिशा-दिशा की मिट जाती है-
घनी निशा की छाया;
तन्द्रा से सब जग कर कहते-
नव प्रकाश लहराया;

जड़ता भाग तुरत जाती है-
श्रम की महिमा जगती;
जीवन-क्रम के पथ पर अविरल-
शक्ति मनुज की लगती;

जिसको जो है प्रेय उसी में-
चित्त स्वयं रम जाता;
ज्योति परिश्रम की जगती है-
श्रम-सीकर मुस्काता;

जिसमें जितनी शक्ति, हृदय से-
वह उतना श्रम करता;
सकल एषणा-पूर्ति-भाव से-
अपना अन्तर भरता;

पहले चाह यही थी केवल-
उदर-पूर्ति हो जाए;
काम-तृप्ति के लिए कहीं से-
कोई साधन आए;

किन्तु, समाज वना जब भू पर-
नई व्यवस्था आई;
क्षुधा-काम से ऊपर की तव-
मन में चाह समाई;

जागा नव सौन्दर्य मनुज में-
नया राग लहराया;
मानव-मन ने नयी प्रगति का-
केतु नया फहराया;

नयी कल्पनाओं के पर से-
उड़ने मनुज लगा था;
अवनी से भी ऊपर नभ तक-
उसका भाव जगा था;

धीरे-धीरे बढ़कर नर ने-
विजय प्रकृति पर पाई;
आतप-वर्षा-हिम से अपनी-
काया स्वयं बचाई;

हिंस्र जीव का कोई भी भय-
मन में शेष नहीं था;
क्षुधा-पूर्ति के लिए किसी को-
कोई क्लेश नहीं था;

सब कुछ उसे मिला था, लेकिन-
शान्ति नहीं थी आई;
तन को सुविधा बहुत मिली पर-
आत्मा थी अकुलाई;

खोज रही थी आत्म-प्रगति का-
मार्ग कहीं मिल जाए;
मानव-जीवन की सार्थकता-
तभी सफल हो पाए;

सच्ची खोज जहां रहती है-
लक्ष्य सिद्ध हो जाता;
जहां खोज की चाह नहीं है-
वहीं मरण मंडराता;

यही नियति का नियम इसी पर-
अब तक सृष्टि खड़ी है;
मानव की यह प्रगति-साधना-
सचमुच बहुत बड़ी है;

भौतिकता से ऊब मनुज ने-
आत्म-कक्ष में झांका;
अपने विशद-विराट रूप को-
नर ने तत्क्षण आंका;

एक किरण मिल गयी उसी क्षण-
नव परिवर्तन आया;
खुले नये आयाम मनुज का-
बल-पौरूप लहराया;

श्रम की महिमा जगी धरा पर-
उतरी नूतन लाली;
क्यारी-क्यारी विहंस उठी थी-
छाई नव हरियाली;

आदिनाथ ने ज्योति जगाई-
चमक उठा था अगजग;
नव प्रकाश से था आप्यायित-
कोना-कोना जगमग;

उसी दीप से दीप जले हैं-
परम ज्योति है छाई;
उसी दीप की नूतन लौ से
नई रोशनी आई;

जय तीर्थंकर ! जयति जिनेश्वर !
रहे धरा आलोकित;
रहे ज्ञान की नवल शिखा से-
भव का हृदय सुसज्जित;

उसी सूर्य की विभा यहां पर-
इस धरती पर आई;
पूज्यपाद आचार्य प्रवर ने-
शान्ति मधुर सरसाई;

आओ, सब जन मिलकर उनका
करें हृदय से वन्दन;
उनके वचनामृत से भव का-
मिट जाएगा क्रन्दन ! !

षष्ठम पुष्प

जीवन की यह धारा अविरत-
रहती सदा प्रवाहित;
बाधाओं के शिला खण्ड से-
होती कभी न बाधित;

शून्य-प्रान्त से निकली पतली-
धारा भू पर आई;
अखिल विश्व की आज उसी में-
दिखती है परिछाई;

बड़े-बड़े ढोकों को इसने-
काटा पार लगाया;
इसकी गति का महामनस्वी-
ऋषियों ने गुण गाया;

पहले यहीं अहिंसा की थी-
जागी निर्मल वाणी;
यहीं जगी थी प्रथम भावना-
मानव की कल्याणी;

घोर अमानुष कर्म मनुज के-
थे जीवन के साधन;
इसी वृत्ति का योग हुआ था-
विपुल कर्म मनभावन;

हिंसा से ही मन में भीषण-
पाप-वृत्ति है जगती;
तरह-तरह के पापाचारी-
जिससे अग्नि सुलगती;

इसीलिए है काव्य कि मन में-
दाह न जगने पाए;
हिंसा का विप व्याल न जगकर
अपना शीश उठाए;

हिंसा है मानव की पशुता-
नर को निम्न बनाती;
परम ज्योति की ओर कभी भी-
इसकी वृत्ति न जाती;

जब-जव हिंसा बढ़ी धरा पर-
अन्धकार बढ़ आया;
इसके तिमिर-व्यूह में नर ने-
अपना स्वत्व गंवाया;

भ्रष्टाचार जहां जो फैला-
पाप जहां भी दिखता;
हिंसा की ही श्याम मासी से-
भाग्य मनुज है लिखता;

यही मूल है सब पापों का-
अधोमुखी प्रतिगामी;
इसके होते नर न हुआ है-
उच्च शिखर का कामी;

मानव में जब दृढ़ता आई-
शुभ विचार तब जागे;
लगा सोचने कलुश वृत्ति नर-
कैसे मन से त्यागे ?

यही समय था पुण्य तीर्थ से-
फूटी निर्मल धारा;
जड़ता-ग्रस्त मनुज ने पाया-
सात्विक विमल सहारा;

गूंज उठी जीवन की वाणी-
हिंसा मत अपनाओ;
परम धर्म है सदा अहिंसा-
इसकी ज्योति जगाओ;

मनसा-वाचा और कर्मणा-
हिंसा कभी न जागे;
डंसनेवाला सर्प यही है-
इससे मानव भागे;

पहले पहल धरा पर हिंसा-
के प्रति रोष जगा था;
नव संवत्सर के आने का-
यह उद्घोष जगा था;

अब तक जो था मूल कर्म का-
कांप उठी वह डाली;
पीड़ित मानवता ने जगाकर-
वृत्ति नयी अपना ली;

गूंज उठी फिर भू-मण्डल पर-
करूणामय मृदु वाणी;
परम ज्योति है वरण इसी का-
करते हैं सब ज्ञानी;

पहला यह सोपान कि जिससे-
उर्ध्वमुखी नर होता;
यही आचरण सात्विक जिससे-
अहं मनुज का खोता;

हिंसा व्यापक बोध कि जिससे-
मानव को बचना है;
जहां नहीं हो कष्ट तनिक भी-
ऐसा जग रचना है;

वृत्ति सलोनी यही कि नर से-
दुःख न कोई पाए;
मन-वाणी औं कर्म सकल से-
सब में प्रीति जगाए;

किसी तरह का दुःख किसी को-
कोई कभी न झेले;
परम भाव के महामोद में-
मानव प्रतिपल खेले;

अभय रहे मानव के मन में-
नहीं किसी का भय हो;
मिटे कलुष, जन-जन का भू पर-
निर्मल पुण्योदय हो;

जयति जिनेश्वर-तीर्थंकर की-
वाणी है अविकारी;
परम पूज्य आचार्य वचन से-
प्रमुदित है नर-नारी ! !

सप्तम पुष्प

मानव की है सहज लालासा-
उच्च शिखर पर आए;
सहज ढंग से जीवन की सब-
कटुता मिटती जाए;

अपना यही स्वभाव मनुज का-
शान्ति हृदय में जागे;
जीवन हो आलोक-समन्वित-
मन से जड़ता भागे;

जव-जब घिरा अंधेरा दृग में-
मानव-मन अकुलाया;
राह मिले पर खुद ही जग कर-
दीपक नया जलाया;

सदा प्रकाश मुखी है मानव-
नहीं तिमिर सह सकता;
बहुत दिनों तक अन्धकार में-
कभी नहीं रह सकता;

किन्तु हृदय में जड़ता का भी-
बड़ा कठिन है घेरा;
महामोह से ग्रसित मनुज में-
तम का रहता डेरा;

घने तिमिर की परतों को वह-
तोड़ नहीं है पाता;
गहन तमिस्रा में एकाकी-
कैसे पांव बढ़ाता ?

सच है, सब कुछ खुद करना है-
लेकिन कैसे क्यों कर ?
अनजाने में भटक रहा है-
जीवन जनम-जनम भर;

भू पर तो अनजान सुवन का-
पालन करती माता;
उंगली धरकर ही नन्हा सा-
बालक पांव बढ़ाता;

फिर यह चलना हो जाता है-
जब अभ्यस्त गुणाकर;
भोला शिशु तब चल पाता है-
उंगली स्वयं छुड़ाकर;

लेकिन जब तक पांव न जमते-
तब तक वह एकाकी;
पार नहीं कर सकता अपने-
ऐसी रात अमां की;

यही रीत है साधन पथ की-
चलना खेल नहीं है;
भौतिकता से महाज्योति का-
कोई मेल नहीं है;

स्वार्थ-भाव में लिप्त मनुज को-
लाना है जब ऊपर;
उसको पथ दिखलाना होगा-
उंगली पकड़-पकड़ कर;

भौतिकता के पथ पर अविरल-
बन्धन बड़े-बड़े हैं;
खाई का है गर्त कहीं पर-
पर्वत कई खड़े हैं;

अपने और पराये का जो-
मोह भयंकर जगता;
उसमें ही सांसारिक जन का-
प्राण अहर्निश पगता;

यही विकट झाड़ी है, जिनमें-
जीवन उलझे रहते;
तरह-तरह के झंझावातों-
के घातों को सहते;

अपनेपन का मोह भयंकर-
सबको यहां सताता;
इससे बाहर आ सकने का-
मार्ग न कोई पाता;

जब से जनम लिया मानव ने-
विकट मोह ने घेरा;
अपने और पराए पन का-
रहता मन में डेरा;

तेरे-मेंर की जड़मूलक-
सघन भावना प्रतिपल;
जमकर कुंठित करती रहती-
गति मानस की निश्छल;

मन तो है निर्वन्ध सदा ही-
स्वच्छ मनोहर उत्पल;
अपना कोई भाव न इसका-
बना कभी भी सम्वल;

सहज भाव को छोड़ मनुज जब-
अपर भाव अपनाता;
तभी हृदय के स्वच्छ पटल पर-
कुछ काजल जम जाता;

यह प्रपंच ही मोह-द्रोह का-
होता दुखद सहायक;
यहीं मनुज का प्रबल रोग है-
सभी दुखों का दायक;

परत-परत जम-जमकर कालिख-
पत्थर जब बन जाती;
जीवों को तब जन्म-जन्म तक-
रहती है भटकाती;

यही शत्रु है इससे जब तक-
त्राण न नर को मिलता;
तब तक उसके मन-मानस का-
नहीं कमल-दल खिलता;

इसी दुःख में भटक रहे हैं-
भूतल के सब प्राणी;
ढूंढ रहे हैं, कहीं दिखे वह-
ज्योति विमल कल्याणी;

जिसकी निर्मल दुग्ध-धार में-
अपनी कालिख धो लें;
नव विहान के नव प्रकाश में-
तंद्रिल आंखें खोलें;

जहां चाह बस पंथ वहीं पर-
मानव को मिल जाता;
ज्योति शिखर पर आकर ही नर-
परम तत्व है पाता;

तीर्थंकर ने ज्योति जगाई-
फैला नव उजियाला;
उसी किरण का नव प्रकाश है-
भू पर आनेवाला;

कलुग-व्याल जो जाग रहा है-
उसका अन्त निकट है;
सच मानो, अब उर्ध्वमुखी नर-
का पथ नहीं विकट है;

वही ज्योति अब नव प्रकाश-सी
सम्मुख विहंस रही है;
उसी ज्योति की धार अखण्डित-
भू पर आज बही है;

जय तीर्थंकर ! विकल मनुज को-
अपना आप बनालें;
पूज्यपाद आचार्य देव/अब-
निर्मल राह बतादें ! !

अष्टम् पुष्प

जीवन बड़ा रहस्यपूर्ण है-
कुछ भी समझ न आता;
बिना सहारा पाए कोई-
पार नहीं जा पाता;

काल-व्याल-विकराल-जाल में-
तड़प रहा नर प्रतिक्षण;
उसके चारों ओर दंष्ट्र हैं-
दारुण दुख के भीषण;

नर का सहज स्वभाव प्रकृति के-
पास उसे ले जाता;
किन्तु, वितंडावाद जगत का
उसको दूर भगाता;

सहज स्वभाव ग्रहण करने में-
नव-नव बाधा आती;
तन से लिप्त मनुज की आत्मा-
पार नहीं जा पाती;

शक्ति अतुल है, लेकिन कोई-
राह तनिक दिखलाए;
बिछुड़े बालक की उंगली को-
धर कर लक्ष्य बताए;

महावीर ने यही कहा था-
खुद ही पार करोगे;
करो परिश्रम, परम ज्योति से-
रिक्त हृदय भर लोगे;

यही एक है सत्य कि जग में-
खुद करना है साधन;
परम लक्ष्य की ओर जाग कर-
ध्यान लगाओ प्रतिक्षण;

जग से सदा सुपरिचित होकर-
जीवन में सुख पाओ;
स्वयं रहो भूतल पर निर्भय-
सब को अभय बनाओ;

अपने से निस्संग रहो औं-
जन-जन में मिल जाओ;
आत्मा को विश्वात्मा-पद तक-
जग कर स्वयं उठाओ;

मन की आशा-लतिका को मत-
नेह-नीर से सींचो;
किसी मोह वश भाव हृदय का-
दृग से नहीं उलीचो;

यों तो मन है अटल, किन्तु यह-
सदा डोलता रहता;
आशा और निराशा का ही-
शब्द बोलता रहता;

आशा की ही सकल विफलता-
सदा निराशा बनती;
इन भावों की मैल अहर्निश-
निर्मल मन पर जमती;

इसीलिए है श्रेय, मनुज का-
आशा रहित हृदय हो;
तिमिर-ग्रस्त अन्तर में भास्वर-
निर्मल ज्योति उदय हो;

किन्तु हृदय आशा से वंचित-
तभी स्वतः हो सकता;
जग से स्वयं सुपरिचित होकर-
जग में जब खो सकता;

जब तक मेरा अपना-मन है-
सृष्टि दूर हो जाती;
प्रभु के करुणा कण की उस डर पर-
वृष्टि नहीं हो पाती;

अपना मन खो जाने पर ही-
अहंकार मिट पाता;
ऐसे मन में ही तीर्थंकर-
का प्रकाश मुस्काता;

व्यक्ति-व्यक्ति के श्रम महत्व को-
प्रभु ने ही बतलाया;
बन्द कक्ष के व्यथित जीव को-
खुला क्षितिज दिखलाया;

सच है, खुद ही श्रम करने से-
पंथ सहज मिल जाता;
साधन-पथ पर चलकर मन का-
बन्द कमल खिल जाता;

बाहर से कुछ प्राप्य न सम्भव-
स्वयं हृदय जगता है;
महाभाव के रस में अपने-
श्रम से नर पगता है;

किन्तु प्रश्न है यह दूरी नर-
कैसे तय कर पाए ?
अहंकार का दाह मिटाकर-
परम ज्योति अपनाए;

गुरुवर आकर ही जन-जन को-
निर्मल राह बताते;
भटक रहे मानव को उसका-
लक्ष्य सहज दिखलाते;

जय तीर्थंकर ! तुम ने जन को-
उसका लक्ष्य बताया;
दाह-दग्ध इस वसुन्धरा का-
सारा ताप मिटाया;

उसी परम लौ का यह नूतन-
नव प्रकाश है आया;
उनके स्वागत में जन-मानस-
आज स्वतः लहराया;

पूज्याचार्य प्रवर वसुधा पर-
श्री नानेश हमारे;
उनके वचनामृत को पीकर-
जन-जन हृदय सँवारे ।

नवम् पुष्प

साधु-मार्ग पर चलने को तो-
रहती दुनिया आतुर;
मन गह्वर में रहता ही है-
परम ज्योति का अंकुर;

किन्तु हमारे संग-संग जो-
कल्मष की है धारा;
हमें बाँधनेवाला बन्धन-
उसका ही है सारा;

वही मनुज को अपनेपन में-
नहीं झाँकने देता;
मानव-मन के महाकष्ट का-
वो ही मात्र प्रणेता;

इसीलिए है श्रेय कि अपना-
मन निस्संग बनाओ;
श्रमण पंथ है यही कि इसमें-
अपना ध्यान लगाओ;

नहीं कहीं सम्बन्ध रहे औ-
मन में भाव न जागे;
परम ज्योति के सम्मुख मानव-
अपने को भी त्यागे;

इस निस्संग अवस्था में ही-
अन्तरतर है जगता;
छोड़ सभी कुछ लक्ष्य-बिन्दु पर-
मानव मन है लगता;

यहाँ जागरण है आवश्यक-
तन्द्रा तनिक न आए;
किसी तरह शैथिल्य जाग कर-
मन को नहीं सताए;

सोये नर में ही यह बन्धन-
सदा जागता रहता;
जड़ता का आघात वही नर-
प्रतिपल-प्रतिक्षण सहता;

अपने और पराए का जब-
भाव बिखरने लगता;
तभी हृदय स्वच्छन्द गगन में-
अभय विचरने लगता;

जहाँ कहीं सम्बन्ध बना है-
मन में जड़ता आई;
उर्ध्वमुखी नव शक्ति हृदय की-
तम में जाग न पाई;

इसीलिए निस्संग भाव को-
मन से है अपनाना;
श्रेय सदा है, मानव का खुद-
निज स्वभाव में आना;

अपना ही है यह स्वभाव जो-
जग सकता है अविकल;
अपनेपन में ही होता है-
मानव का मन निश्चल;

विचर रहा मन बाहर-बाहर-
अपनेपन से हट कर;
जहाँ तत्त्व सब मिट जाते हैं-
उनसे केवल सटकर;

यही विषमता काट रही है-
परम ज्योति का आश्रय;
यह प्रपंच है इसमें रहता-
कभी न कोई निर्भय;

किन्तु हृदय की शान्ति जहाँ भी-
खोज रहे जो प्राणी;
उन्हें अभय रहता है प्रतिपल-
यह है सत्य सुवाणी;

हृदय अभयता तभी गहेगा-
जब निस्संग रहेगा;
निर्भय रहकर कष्ट तनिक भी-
कोई नहीं सहेगा;

पहला क्रम है यही कि मन में-
गुण निस्संग जगाए;
अपने व्रत पर रहे अडिग औ-
निर्भय हृदय बनाए;

यही तत्त्व है जिससे मन में-
विमल जागरण जगता;
परम ज्योति के केन्द्र-बिन्दु पर-
अनायास मन लगता;

मानव ही है परम सिद्धि का-
अपना स्वयं प्रणेता;
अपने श्रम से महासिन्धु के-
पार यान खुद खेता;

जय तीर्थंकर ! जागृति के स्वर-
तुमने सहज जगाए;
श्रम की महिमा बता मनुज को-
ज्योति शिखर तक लाए;

कैसे नर उस परम ज्योति का-
रूप स्वयं बन जाए;
तुमने भव के ज्ञान-शिखर के-
पंथ सुगम बतलाए;

वही पंथ है सदा सुवासित-
यही श्रमण-संस्कृति है;
इसी अनादि अनन्त पंथ पर-
मानव की सद्गति है;

आज उसी के परम प्रकाशक-
ज्योतिर्मणि को पाकर;
धन्य मनुज-समुदाय आज है-
अपनी विनय सुनाकर ! !

दशम् पुष्प

कहते सब यह आत्म रमण है-
उन्नति का सोपान प्रथम;
इससे ही कटते हैं केवल-
कर्मों के जंजाल विषम;

जाने कब से कर्मों का है-
दुस्तर भीषण ढेर यहाँ;
जाने कितने जीवन क्रम का-
संचित है अवडेर यहाँ;

जाने कितने जन्म हुए हैं-
कोई जान न पाता है;
महाकाल की क्रूर दाढ़ में-
अपना सब खो जाता है;

अलग-अलग कर्मों का बन्धन-
मनुज न अब तक काट सका;
किसी तरह भी दुःख असीमित-
नहीं किसी से बाँट सका;

किन्तु सुखद है, एक बार भी-
ध्यान अगर लग जाता है;
किसी योग से कभी अगर जो-
हृदय कमल जग जाता है;

उसी जागरण की ज्वाला में-
कर्म स्वतः जल जाते हैं;
यही जन्म की सार्थकता है-
विज्ञ जिसे अपनाते हैं;

और यही है आत्म-रमण जो-
परम ध्यान कहलाता है;
विपुल कर्म को भस्म बनाकर-
मनुज मोक्ष पा जाता है;

यही लक्ष्य है इस जीवन का-
परम ज्योति का वरण करें;
मोक्ष लक्ष्य है इस जीवन का-
उसका हम अनुसरण करें;

महावीर तक धर्म ध्वजों ने-
जग को खूब सजाया है;
मोक्ष-मार्ग के दुर्गम पथ को-
सब ने सुगम बनाया है;

सब ने कहा मनुज से-मन से-
हिंसा का परित्याग करो;
अन्धकार है जहाँ हृदय में-
जागो, वहाँ प्रकाश भरो;

अपने श्रम पर रहे आस्था-
लक्ष्य सुगम हो जाएगा;
दाह-दुग्ध जीवन में मानव-
करुणा का कण पाएगा;

सब ने कहा मनुज ही सब कुछ-
जीवन में पा सकता है;
यही विशिष्ट जीव है भू पर-
मुक्ति गीत गा सकता है;

इसीलिए हे सार्थक मानव-
अपना चरम विकास करें;
खुले हृदय से रन्ध्र-रन्ध्र में-
प्रभु की सुरभि-सुवास भरें;

सृष्टि अनित्य सदा है इस पर-
ध्यान अखण्डित रखना है;
महामत्र्य से ही अमत्र्य के-
सात्विक फल को चखना है;

साधन-व्रत है श्रेष्ठ उसी से-
जीवन का फल सधता है;
प्रतिपल चंचल रहेवाला-
मानव का मन बँधता है;

आशा और निराशा में मन-
विहग निरंतर डोल रहा;
अमृतमय इस जीवन-घट में-
जहर अहर्निश घोल रहा;

संचल मन की गति को जब तक-
मानव रोक न पाता है;
तब तक उसके अन्तर्मन का-
कमल नहीं मुस्काता है;

संयम-व्रत से साधन-पथ पर-
नर जब पाँव बढ़ाता है;
ज्योति-लोक के दरवाजों को-
तभी खोल वह पाता है;

बाहर से कुछ नहीं, हृदय का-
जटिल द्वार है बन्द पड़ा;
वाह्य जगत के कोलाहल में-
अन्तर का स्वर मन्द पड़ा;

वाहर से सव वृत्ति हटा कर-
मन में मनुज प्रवेश करे;
ज्ञान-वारि से कल्मष धोकर-
अपना शुद्ध निवेश करे;

तभी परम पद पा सकता है-
जीवन सुखद बना सकता;
अपने अन्ध-बन्द अन्तर में-
ज्योतिर्मय को ला सकता;

जय तीर्थंकर ! जयति जिनेश्वर
तुम ने राह बताई है;
जगमग ज्ञान-विभा से दीपित-
नूतन सृष्टि दिखाई है;

वही ज्ञान की एक किरण जो-
भू पर आज प्रकाशित है;
दिव्य रूप में वही हमारे-
सम्मुख आज सुभाषित है;

उसके ही पद-पद्मों पर हम-
मन के सुमन चढ़ाते हैं;
शीश झुकाकर उनका ही-
आशीष अहर्निश पाते हैं ! !

एकादश पुष्प

सदा प्रवाहित यह संस्कृति है-
साधु-मार्ग की अविरत गति है;
यही मार्ग सब कल्मष धोकर-
महावीर से पोषित होकर;

विकसित होता रहा धरा पर-
शाश्वत जीवन ऊर्जा लेकर;
कहीं न कोई मिली रुकावट-
द्विविधा की कुछ रही न खटपट;

हिमगिरि से ज्यों धार प्रवाहित-
होकर चलती भू पर प्रमुदित;
आस-पास के थल को शीतल-
करती चलती रहती प्रतिपल;

कोई धारा आगे बढ़कर-
जब होती विराट अवनी पर;
तरह-तरह के उसमें आकर-
तत्त्व अनेकों मिलते जी भर;

जिससे गंदा जल हो जाता-
नहीं सुवासित तल रह पाता;
लोग न तट पर आने पाते-
विहगों के दल उड़-उड़ जाते;

उठने लगती गंध अपावन-
कभी न रहता तट मनभावन;
फूल सुकोमल मुर्झा जाते-
उस पर कोई गीत न गाते;

कोई उसका पान न करता-
वहाँ न कोई यान उतरता;
सूना-सूना तट हो जाता-
उसका सब वैभव खो जाता;

यही हुआ इस पावन जल का-
धर्म-मार्ग के इस सम्वल का;
चली श्रमण-संस्कृति जो भू पर-
महावीर की आशिष लेकर;

उस विराट जल-धारा में अब-
बने अचानक नए-नए ढव;
तरह-तरह के पापाचारी-
आए इसमें तत्त्व-विचारी;

जल था निर्मल नील गगन-सा-
निश्छल प्रेमिल कुसुम नयन-सा;
इसमें गंदी चादर धोकर-
आंखों के काजल में खोकर;

मिला दिया जिससे यह निर्मल-
बना अपावन सरित का जल;
उगे किनारे कितने तरुवर-
काँटे झुरमुट जागे तट पर;

दुग्ध धवल सरिता की धारा-
धर्म-मार्ग का सबल सहारा;
अनायास जड़ता में डूबी-
स्वयं लगी अपने से ऊबी;

श्रमण-पंथ पर बाधा आई-
घटा अपावन थी मँडराई;
शिथिलाचार बढ़ा जन-जन में-
मनोहारिणी इस उपवन में;

कंथा जो थी बड़ी सुहावन-
चमक रहे थे जिसके कण-कण;
फटी अचानक वही चदरिया-
लगी झाँकने श्याम बदरिया;

तभी पूज्य हुकमी चन्द जी ने-
कहा कि आओ, चादर सीने;
यह सम्बल है बड़ा सलोना-
इसको निर्मल ही है होना;

किया तुरत उद्घोष कि इसके-
पंथ सँवारें तप से कस के;
कोई तार न छूटे ढीला-
रहे न कोना पंकिल गीला;

महावीर ने जो बतलाया-
श्रमण-पंथ जो है दिखलाया;
उसका ही सब होगा पालन-
शुद्ध बनेगा जीवन-भावन;

उनके गुरु श्री लालचन्द जी-
शिथिल हुए थे पर वे भी
पूज्यपाद ने छोड़ा उनको-
नमन किया पर उनके गुण को;

कहा कि यह है पंथ सनातन-
सदा रहेगा शुद्ध सुहावन;
कल्मष सारा धुल जाएगा-
नव प्रकाश फिर से आएगा;

दृढ़ता से फिर पाँव उठाया-
श्रमण-धर्म का शंख बजाया;
दूर-दूर तक आभा फैली-
हुई न चादर फिर मटमैली;

वही ज्योति फिर आज जगी है-
लौ से फिर लौ वही लगी है;
उन्हें नमन हम सब करते हैं-
हृदय ज्योति से हम भरते हैं;

वही किरण अनवरत प्रकाशित-
होती सद्यः विभा सुवासित;
जिससे अवनी स्वतः खिलेगी-
किरण-किरण से मुग्ध मिलेगी ! !

द्वादश पुष्प

तप की धार अखण्डित चलती-
ज्योति साधना की नित जलती;
प्राणी अविरल आते रहते-
एक दिशा के रही बनते;

जिसमें शिथिलाचार समाता-
लक्ष्य-भ्रष्ट मानव हो जाता;
उसकी दृष्टि मलिन हो जाती-
उसकी विभुता सब खो जाती;

उसमें कोई तत्त्व न रहता-
जीवन का कुछ सत्व न रहता;
अपना सब कुछ खोकर शव-सा-
जलता रहता निर्जन दव-सा;

इसी तरह सरिता का जीवन-
बन जाता जब घोर अपावन;
उसका जल हो जाता दूषित-
उसमें रहते कीडे मिश्रित;

कोई उसके गंदे जल को-
कभी न छूता जल कज्जल को;
उससे सभी अलग हट जाते-
उसके पथ पर कभी न आते;

धर्म-मार्ग का हाल यही है-
रीति वहाँ भी यही सही है;
दूषित कण जब आ जाते हैं-
मंगल भाव न जग पाते हैं;

धर्म-विधर्मी का गढ़ होता-
                    अपना सारा गौरव खोता;
ठूंठ वृक्ष-सा वह रह जाता-
                    वहाँ न कोई पक्षी आता;

श्रमण-पंथ का हाल यही था-
                    जाग्रत नया विचार नहीं था;
हुकमी चन्द जी ने ही आकर-
                    उसे जगाया ज्योति जगाकर;

अब वह वही सनातन पथ पर-
                    बढ़ता आयां सात्विक रथ पर;
और पूज्य शिवलाल प्रवर ने-
                    दिया न इसको तनिक बिखरने;

अपने विमल प्रकाण्ड ज्ञान से-
                    रहे प्रकाशित शुभ्र भानु से;
अक्षय सुख का रूप मधुर है-
                    इसके हित ही मन आतुर है;

सृष्टि असार तत्त्व का संचय-
                    क्षय इसका होता है निश्चय;
इसे समझकर पूर्ण रूप से-
                    अनुभव के सब शुभ स्वरूप से;

कठिन साधना-व्रत को पाला-
फैला जिससे नव उजियाला;
वही धार अब सुगम हुई थी-
श्रेष्ठ-दक्ष-शुभ परम हुई थी;

नए-नए जिज्ञासु यहाँ पर-
अपनी प्यास बुझाए सत्वर;
साधन औं विद्वत्ता का गुण-
रहता इनके मन में अक्षुण्ण;

जिससे था तम तनिक न टिकता-
ज्ञान-दीप से भुवन चमकता;
अरुणोदय की यही घड़ी थी-
दिव्य ज्ञान की नयी लड़ी थी;

यों तो पहले शुष्क ज्ञान का-
आग्रह जागा व्याकुल मन का;
किन्तु यहाँ अब ज्योति नयी थी-
सुगम भक्ति भी जाग गयी थी;

पूर्ण भक्ति के भीने रस से-
हुए प्रभावित सब बेबस से;
नयी लालसा जगी हृदय में-
ज्ञान-सुरभि के शुभ्र उदय में;

हुआ ज्ञान उद्वेलित मन में-
आया नव प्रकाश जीवन में;
नये ज्ञान की नयी त्वरा थी-
गरिमा-मण्डित वसुन्धरा थी;

इनकी ज्ञान-सुरभि से प्लावित-
जन-जन मन से थे अभिभावित;
इनका था पांडित्य विलक्षण-
सात्विकता का करते रक्षण;

श्रमण-पंथ का इनसे नूतन-
नयी रागिनी का उद्बोधन;
प्रतिक्षण मिलता रहा अबाधित-
ज्ञान-प्रभा से अभिनव मंडित;

कोई रूखे-सूखे तरुवर-
पर जब बरसे जीवन-जलधर;
तब वह होता है प्रतिपल पुलकित-
नई कोंपलों से अभिनंदित;

वैसे ही यह मार्ग अचानक-
खिला प्राप्त कर निर्मल साधक;
इसमें अब नव रंग खिले थे-
उत्थित जीवन मान मिले थे;

नई विभा से भूषित होकर-
अपनी जड़ता-तन्द्रा खोकर;
जाग उठा ज्यों ऊषा जगती-
नयी साधना खिलकर पगती;

जो भी था अज्ञान तिमिर-सा
जाग उठा वह दीप्त मिहिर-सा
उसमें गूँजी नयी रागिनी-
भाग चली अब कुटिल यामिनी

जैसे तरु की सूखी डाली-
पाकर नूतन पल्लव-लाली;
विहँस-विहँस कर खिल पड़ती है-
शुष्क पत्तियाँ सब झड़ती हैं;

धुलकर निर्मल जब बन जाता-
जन-जन का तब हृदय लुभाता;
विहगों के दल-के-दल आते-
अपना सौरभ गीत सुनाते;

पथिक बैठकर सुस्ताते हैं-
अपनी श्रान्ति मिटा जाते हैं;
रहता कभी न खेद यहाँ पर-
जीवों का कटु भेद यहाँ पर;

जब निदाध का दीप्त दिवाकर-
करता विह्वल लू बरसाकर;
इसकी छाया सदा लुभाती-
मन में शीतल रस पहुँचाती;

अगजग सदा सुशीतल लगता-
यहाँ न कोई दाह सुलगता;
जन-जन तक सब यहाँ पहुँचकर-
सदा सुखाते श्रम का सीकर;

यही हुआ उस नव जीवन से-
हुए मनुज अभिनंदित मन से;
उनमें नूतन राग जगा था-
श्रमण-धर्म-अनुराग जगा था;

विमल जिनेश्वर के गुण गाकर-
शीश नवाते विनय सुनाकर;
जय तीर्थंकर ! ज्योति जगाओ !
अन्धकार घनघोर हटाओ ! !

त्र्योदश पुष्प

थे आचार्य उदय सागर जी-
मूर्त धर्म के जागे स्वर ही;
ज्ञान-शिखर तक आए अपने-
देखे जनहित के नित सपने;

इनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी-
स्नेह-सुवासित-सरस लहर थी;
था अनुराग अकम्पित दृग में-
रही चपलता जीवन मृग में;

भोग-योग का संयम साधा-
जग कर मन की गति को बाँधा;
ये संन्यास-गृहस्थ तुला पर-
मन को बाँधा स्वयं जगाकर;

हुए भोग से योग प्रणेता-
रहे कर्म के सदा सुचेता;
शुद्ध भाव में हृदय रमाए-
पंथ निरंतर गढ़ते आए;

तत्व हृदय का ढूँढ रहे थे-
मन पर दुर्वह भार सहे थे;
जीवन तो अनमोल रतन है-
सार्थक भू पर मानव तन है;

ऐसे यों ही चला न जाए-
निर्जन में मत कलि मुर्झाए;
इसे सुअवसर देना होगा-
प्राप्य जगत से लेना होगा;

यही सोचकर बढ़ते आए-
दिव्य ज्योति पर दृष्टि गड़ाए;
फिर तो सब कुछ प्राप्त हुआ था-
जगकर अन्तर आप्त हुआ था;

वाल्या वय से ही था मन में-
दृढ़ वैराग्य जगा जीवन में;
सुन्दर रूप बड़ा आकर्षक-
मुग्ध देखकर होते दर्शक;

माता और पिता थे सुखकर-
इनकी इच्छा पर ही निर्भर;
जो भी चाह कभी जगती थी-
देर पूर्ति में कब लगती थी ?

पूर्ण सभी कुछ तत्क्षण होता-
सुखद शान्ति का मन था सोता;
हृदय नहीं उद्विग्न हुआ था-
कभी न तिलभर खिन्न हुआ था;

ऐसे में ही माता-मन में-
जगी लालसा शुभ्र लगन में;
बालक का परिणय हो जाए-
यह भी अपना गेह बसाए;

मधुर गृहस्थी है आवश्यक-
　　　　　　　　यही सुखद जीवन की द्योतक;
इससे चलता वंश सुसज्जित-
　　　　　　　　होता जीवन प्रेम-निमज्जित;

यही सोचकर मन में अभिदित-
　　　　　　　　किया सभी कुछ माँ ने निश्चित;
लग्न ब्याह का शुभ्र धराया-
　　　　　　　　गीत मनोहर सब ने गाया;

निकली थी बारात मनोहर-
　　　　　　　　सभी तरह सज-धजकर सुन्दर;
मण्डप में फिर जन-जन आए-
　　　　　　　　नव आनन्द-प्रमोद मनाए;

इतने में ही वहाँ अचानक-
　　　　　　　　घटना घटी विचित्र-विधायक;
वर के सिर का सेहरा भू पर-
　　　　　　　　हुआ धूल से धूसर गिरकर;

इसे देख वे चौंक पड़े थे-
　　　　　　　　दूर कहीं पर नयन गड़े थे;
बोले सेहरा गिरा यहां पर-
　　　　　　　　फिर न चढ़ेगा मेरे सर पर;

अब विवाह है गंजन मुझको-
बाँध न सकते बंधन मुझको;
प्रभु की भी है यही प्रेरणा-
मेरी भी अब यही एषणा;

अब विवाह मैं नहीं करूँगा-
जीवन में वैराग्य गहूँगा;
यही आचरण शुद्ध सदा है-
सचमुच मुझको यही बदा है;

इतना कहकर बाहर आए-
मन-मानस में थे हर्षाए;
मन में तनिक विकार नहीं था-
उन्नति का आधार यही था;

कठिन साधना-व्रत के पथ पर-
शुद्ध भाव से संयम रथ पर;
बनकर आए ज्ञान प्रदाता-
बने असंख्यों के सुख दाता;

बड़े विनम्र, मधुर था जीवन-
सभी तरह से विमल आचरण;
सहज भाव से सब हो जाता-
मन था सात्विक ज्योति जगाता;

इनका मत था यही सुनिश्चित-
अपने हो संन्यास सुसज्जित;
कोई बाहर से कुछ लाकर-
दे न सकेगा कभी जगाकर;

अपने ही है जगकर पाना-
इस जीवन को सुखद बनाना;
यों तो जीवन सदा प्रवाहित-
धारा है भूतल पर अभिहित;

किन्तु उसी का जीवन सार्थक-
होता प्रतिक्षण भव आकर्षक;
प्रभु की ज्योति जगाई मन में-
परम ज्ञान पाया जीवन में;

यही सोचकर श्रमण-धर्म का-
किया निरूपण शुद्ध कर्म का;
हुए धरा पर ज्ञान-प्रचारक-
जन-जन के थे भव-उद्धारक.

जयति जिनेश्वर ! जय तीर्थंकर !
गाए महिमा हम निशि-वासर,
जन-जन अपना हृदय रमाए-
जीवन का सब दैन्य मिटाए;

अब विवाह है गंजन मुझको-
बाँध न सकते बंधन मुझको;
प्रभु की भी है यही प्रेरणा-
मेरी भी अब यही एषणा;

अब विवाह में नहीं करूँगा-
जीवन में वैराग्य गहूँगा;
यही आचरण शुद्ध सदा है-
सचमुच मुझको यही वदा है;

इतना कहकर बाहर आए-
मन-मानस में थे हर्षाए;
मन में तनिक विकार नहीं था-
उन्नति का आधार यही था;

कठिन साधना-व्रत के पथ पर-
शुद्ध भाव से संयम रथ पर;
बनकर आए ज्ञान प्रदाता-
बने असंख्यों के सुख दाता;

बड़े विनम्र, मधुर था जीवन-
सभी तरह से विमल आचरण;
सहज भाव से सब हो जाता-
मन था सात्विक ज्योति जगाता;

इनका मत था यहीं सुनिश्चित-
अपने हो संन्यास सुसज्जित;
कोई बाहर से कुछ लाकर-
दे न सकेगा कभी जगाकर;

अपने हो हैं जगकर पाना-
इस जीवन को सुखद बनाना;
यों तो जीवन सदा प्रवाहित-
धारा है भूतल पर अभिहित;

किन्तु उसी का जीवन सार्थक-
होता प्रतिक्षण भव आकर्षक;
प्रभु की ज्योति जगाई मन मे-
परम ज्ञान पाया जीवन में;

यहो सोचकर श्रमण-धर्म का-
किया निरुपण शुद्ध कर्म का;
हुए धरा पर ज्ञान-प्रचारक-
जन-जन के थे भव-उद्धारक;

जयति जिनेश्वर ! जय तीर्थंकर !
गाएँ महिमा हम निशि-वासर;
जन-जन अपना हृदय रमाए-
जीवन का सब दैन्य मिटाए;

यही मात्र सार्थकता भव की-
धरती पर सब जाग्रत लव की;
जय-जय-जय तीर्थंकर तेरी-
धरती सदा रहेगी चेरी ! !

चतुर्दश पुष्प

जीवन के स्वर नए राग में-
खुलते सौरभ ज्यों पराग में;
यह तो शाश्वत नियम भुवन का-
तत्त्व यही है नव जीवन का;

जगते हैं जब वीणा के सुर-
आकर जुड़ते हैं मन आतुर;
विह्वलता तब मिट जाती है-
शान्ति-विमलता लहराती है;

श्रमण-पंथ में अब तो निर्मल-
निकल रही थी धारा उज्ज्वल;
जहाँ प्रेम का गीत सुनाते-
संयम-व्रत से जन-जन गाते;

अब तो शान्त-विशद थी धारा-
मिला सभी को जहाँ सहारा;
कठिन तपस्या-साधन का बल-
देता सब को जीवन सम्बल;

श्री आचार्य चौथमल जी ने-
कहा-किया जो प्राप्त सभी;
वही लक्ष्य हम हैं दिखलाते-
साधन श्रम की विजय बताते;

इनके मन में सतत् निरन्तर-
ज्योतित था नव जीवन का स्वर;
किसी तरह की तनिक शिथिलता-
रोक न पाई कोई ममता;

राग नयन में जब जगता था-
हृदय भटकने कुछ लगता था;
तभी कठिन साधन के बल से-
मोड़ लिया मन तप-कौशल से;

जो भी जग में रहकर जग से-
विरत रहा है पंकिल मग से;
शिथिल न पड़ते जिनके साधन-
रहते हैं उतिष्ठ वही जन;

जीवन का क्रम बड़ा सनातन-
इसकी गति भी है मनरंजन;
इसीलिए भूतल के प्राणी-
गढ़ते अपनी नवल निशानी;

जड़ता ही मन को धरती हैं-
विह्वल जन-जन को करती है;
जो यात्री हैं अन्तर्पथ के
दिव्य साधना-कंचन-रथ के;

वे तो पार तुरत हो जाते-
उनको कोई नहीं सताते;
यही प्रश्न पट कैसे टूटे ?
जड़ता मन से कैसे छूटे ?

कभी एक था मर्कट आया-
एक कलश पर ध्यान लगाया;
कलसे में था अन्न मनोहर-
भरा-पुरा औं सुन्दर-सुन्दर;

कपि ने अपना हाथ डालकर-
मटर बटोरे सब सँभालकर;
मुष्टि बाँध ली कुछ सुस्ताकर-
बड़े मौज में कुछ हर्षा कर;

किन्तु कलश में मुष्टि सधी जब-
मुष्टि नहीं पर रही बँधी तब;
उससे छुटकर कैसे आए-
वानर को यह कौन बताए?

यही हाल है इस दुनिया का-
जलनेवाले बुझे दिया का;
मुट्ठी में सामान बटोरे-
कौन बताए कैसे छोड़े;

मटर जभी छूटे मर्कट से-
उसकी लोभी मुष्टि विकट से;
तभी हाथ बाहर आया था-
अपना प्राण बचा पाया था;

यही हाल है जीवन-क्रम का-
मानव की गति-मति-उपक्रम का;
झूठ-मूठ हम संचय करते-
अपने दामन को नित भरते;

इनसे मन को विरत बनाएँ-
परम तत्त्व का ध्यान लगाएँ;
तभी परम-पद पा सकते हैं-
जीवन को सुलझा सकते हैं;

यों तो जीवन उलझा रहता-
प्रतिक्षण भार हृदय है सहता;
जहाँ नहीं रुकना रुक जाता-
अपना खुद उपहास कराता;

श्री आचार्य चौथमल बोले-
मानव मन का बन्धन खोले;
बन्धी हुई है मुट्ठी नर की-
शक्ति नहीं है कुछ ऊपर की;

अपने सब कुछ करना होगा-
हृदय ज्योति से भरना होगा;
बन्धी हुई मुट्ठी को खोलो-
अपने बल पौरूष को तोलो;

सब कुछ क्षण में मिल जाएगा-
नव प्रकाश फिर लहराएगा;
संयम-व्रत पर पाँव बढ़ाकर-
अविरत मन को स्वयं जगाकर;

मानव पाता सब कुछ जग में-
शक्ति उभरती प्राण-विहग में;
यही श्रेष्ठ साधन है अभिनव
ग्रहण यही करता है मानव;

ज्योति [illegible] बनते चलकर-
यही पंथ है जग में मनहर;
जय तीर्थंकर ज्योति जगाओ-
मन का सत्य-स्वरूप दिखाओ ! !

पंचदश पुष्प

करुणा जीवन का संबल है-
अखिल सृष्टि का सात्विक बल है;
तरह-तरह के जीव धरा पर-
सदा नियति पर रहते निर्भर;

कुछ तो माँग रहे दृढ़ आश्रय-
कुछ रहते हैं सबसे निर्भय;
कहीं क्षुधा की होड़ लगी है-
कहीं अपरिमित तृषा जगी है;

छोटों का अस्तित्व मिटाकर-
कोई जीते मोद मनाकर;
जिसमें शक्ति जहाँ है जितनी-
अपने में व्यय करता उतनी;

इसीलिए तीर्थंकर बोले-
जड़ता का नर बन्धन खोले;
जीओ और दूसरे को भी-
जीने दो, मत होना लोभी;

यही एक सिद्धान्त कि जिस पर-
पुण्य पुरुष रहते हैं निर्भर;
जीव-दया का यही मंत्र है-
इस घेरे में सब स्वतंत्र है;

उर्ध्वमुखी जन कहते हैं सबसे-
तड़प रहा है मानव कब से;
इसे नया आयाम चाहिए-
शुभ विचार शुभकाम चाहिए;

आचार्य पूज्य श्री लाल प्रखर थे-
जीवन के उज्ज्वलतम् स्वर थे;
सबको सात्विक पंथ दिखाया-
जग को जगकर सुखद बनाया;

कहा कि जीओ मोद मनाते-
नहीं किसी को दुःख पहुंचाते;
अन्य जीव भी हैं धरती पर-
उन्हें चाहिए करुणा का स्वर;

औरों को सुख देते, अपना-
पूर्ण करो जीवन का सपना;
फिर इससे आगे है चलना-
तपः ज्वाल में भी है गलना;

तभी जन्म सार्थक होता है-
मानव-मानव में खोता है;
अपनी आवश्यकताओं को-
यज्ञ-कुण्ड में प्रतिपल झोंको;

औरों के हित करो निवारण-
इच्छाओं का, सुमन सुहावन;
तभी खिलेगा, मन विहँसेगा-
जीवन में नव सुयश मिलेगा;

विकरित होकर जीव धरा पर-
सब को कहता है समझाकर;
सदा स्वयं भी उस पर चलता-
कठिन तपस्या में है जलता;

तभी सफल वह बन पाता है-
पथ पर जन-जन को लाता है;
सत्प्रयास में ढील न देता-
औरों के सुख में सुख लेता;

साधु-पुरुष हैं सब के रक्षक-
जीव-मात्र के शुभ संरक्षक;
नियति उन्हें बल देती रहती-
सत्व-धार भूतल पर बहती;

सूरज-चाँद नये दिखते हैं-
भाग्य भुवन का वे लिखते हैं;
उनकी करुणा भूतल तल पर-
बनती सब जीवों की सहचर;

जीव-मात्र सब जड़चेतन में-
रहती धड़कन सब कम्पन में;
कुछ भी तिलभर भिन्न न होता-
बहता सब में सात्विक सोता;

आत्मा तब विश्वात्मा बनती-
विमल भावना स्वयं उभरती;
वैर-द्वेष का नाम न रहता-
छल-प्रपंच का काम न रहता;

एक सूत्र में बँधकर जीवन-
करता सब का शुभ प्रक्षालन;
समरसता जीवन में आती-
विभुता की मधु ज्योति जगाती;

क्लेश न कुछ भी रहने पाता-
रन्ध्र-रन्ध्र तक मन मुस्काता;
परमानन्द मनुज है पाता-
मानवता का शंख बजाता;

कहा जिनेश्वर ने-जग देखे-
केवल अपना भाग्य न लेखे;
जन-जन का दुख दैन्य मिटाए-
सबको विमल सुपंथ दिखाए;

तत्त्व बताए सदा अनश्वर-
यही अमर सिद्धान्त धरा पर;
अब तक जो मधु दीप जगा है-
मानस में जो प्रेम पगा है;

यह अवलंबित इसी तथ्य पर-
साधु-पुरुष के सत्य कथ्य पर;
दीप-दीप से जलता आया-
सत्य किरण का ध्वज फहराया;

जयति जिनेश्वर ! भूतल क्षण-क्षण-
चरण कमल का करता वन्दन;
व्यर्थ न होगा कभी परिश्रम-
सदा जयी है मानव का श्रम ! !



षष्ठदश पुष्प

श्रमण-पंथ जीवंत लोक है-
नहीं यहाँ पर तनिक शोक है;
जो भी है आनन्द-मग्न है-
धरती का यह शुभ्र लग्न है;

इस पथ पर जो आते उनका-
कौन करेगा वर्णन गुण का ?
दिशा-दिशा में वे मुस्काते-
कोई उनको बाँध न पाते;

यों तो दुनिया बड़ी चपल है-
क्रन्दन-मिश्रित चहल-पहल है;
वादी औं प्रतिवादी स्वर का-
शब्द ध्वनित है सब घर-घर का;

लेकिन शुद्ध विचार जहाँ हैं-
अतुल शान्ति वरदान वहाँ है;
वहाँ वितंडावाद नहीं है-
वहाँ विधर्मी नाद नहीं है;

श्रमण-पंथ अब महा बेलि-सा-
फैला भू पर दिव्य केलि-सा;
कितने इसके पथ में आए-
चाहा लोगों को भरमाएँ;

जमकर तर्क-वितर्क उठाए-
भ्रान्ति असफलता की फैलाए;
किन्तु यहाँ आचार्य प्रखर थे-
पूज्य जवाहर लाल प्रवर थे;

वादी का स्वर तूल सरीखा-
उड़ा स्वयं सब तीखा-तीखा;
जो भी आए उनके सम्मुख-
ठहर न पाए उनके अभिमुख;

ये प्रकाण्ड विद्वान अतुल थे-
सभी तरह से ज्ञान-बहुल थे;
तर्कों में भी पारंगत थे-
आत्म-भाव में भी उन्नत थे;

और साथ ही निष्ठा पूर्वक-
धर्म-मार्ग के थे अभिभावक;
तत्त्व नहीं था दृग से ओझल
खिला हुआ था मन का उत्पल;

शब्द-शब्द में जोर वहाँ था-
ज्ञान अतुल सब ओर वहाँ था;
अतः विरोधी ठहर न पाते-
तार्किक अपने मुँह की खाते;

बालकपन से ही तो इनमें-
शुभ वैराग्य भाव थे जनमे;
माता और पिता की छाया-
छूटी, बचपन था भरमाया;

सहसा मामा के घर पाई-
ममता की मृदु सुखद जुन्हाई;
वहीं साधु-दर्शन का फल था-
जीवन का सौभाग्य-सुफल था;

फिर तो नव वैराग्य जगा था-
परम ज्योति से हृदय लगा था;
सब कुछ क्षण में बदल गया था
भूतल सारा नया नया था;

विद्या के व्यसनी थे क्षण में-
हृदय रमाया आराधन में;
शास्त्र-ज्ञान में मंडित होकर-
श्रमण-पंथ पर आए सत्वर;

संयम की नव ज्योति जगाकर-
क्रान्ति मचायी शंख बजाकर;
सारा भूतल हुआ चमत्कृत-
ये थे अतुलित ज्ञान समन्वित;

यही समय था देश जगा था-
आजादी का बिगुल बजा था;
देश गुलामी का विष पीता-
अब तक किसी तरह था जीता;

बन्धन में जकड़ा था भारत-
तड़प रहा था होकर आरत;
भारतवासी दास बने थे-
जीवन में उपहास बने थे;

घर-घर से उठता था क्रन्दन-
आर्तनाद करते थे जन-जन;
वीर देश के जाग पड़े थे-
रण में योद्धा आज खड़े थे;

सब में नूतन जोश जगा था-
सर पर बड़ा कलंक लगा था;
इस कलंक को धोना ही है-
मुक्त देश को होना ही है;

गाँधी-नेहरु-तिलक खड़े थे-
वीर सुभाष पटेल अड़े थे;
भारत को अब मुक्त करेंगे-
कठिन दासता नहीं सहेंगे;

पूज्य जवाहर जी भी आए-
देश-मुक्ति में हाथ बटाए;
जगह-जगह पर जोश जगाया-
आजादी का पाठ पढ़ाया;

राजनीति औं धर्म-नीति का-
संगम जागा देश-प्रीति का;
यह था नव उत्सव का गुंजन-
राष्ट्र-भूमि का था यह वन्दन;

राजनीति से धर्म-नीति थी-
दूर अभी तक यही-रीति थी;
लेकिन अब वह नए मंत्र का-
सूत्र बना उत्थान तंत्र का;

सत्य ज्योति के पथ पर बढ़कर-
ज्ञान-शिखर तक आए चढ़कर;
हुए देश के लिए समर्पित-
किया राष्ट्र का दृग उन्मीलित;

यह विकास था नयी दिशा का-
तिमिर मिटाया घनी निशा का;
सब को नूतन मार्ग बताया-
नए धर्म का दीप जलाया;

श्रमण-पंथ पर रहे अवस्थित-
चित्त हुआ था कभी न विचलित;
सब दिन आनन चमक रहा था-
ज्ञान दृगों में दमक रहा था;

मार्ग सजाया, किया सुहावन-
धर्म-पंथ अब था मनभावन;
वर्तमान की नयी कड़ी में-
समय-काल की कठिन घड़ी में;

श्रमण-पंथ को आगे लाए-
जन-जन को ये सुख पहुँचाए;
मूल मंत्र है यही धर्म का-
परिचय देता जो सुकर्म का;

जय तीर्थंकर ! जयति जिनेश्वर-
ज्ञान-किरण से हो जग भास्वर;
आओ, जड़ता सघन मिटाओ-
भूतल पर नव जीवन लाओ ! !

सप्तदश पुष्प

धर्म सुवासित सदा रहा है-
जीवन का जल सदा बहा है;
इसको कोई घेर न पाया-
कोई बन्धन कभी न आया;

श्रमण-पंथ अब मुक्त हवा में-
लगा विचरने नयी प्रभा में;
नया-नया अब द्वार खुला था-
अब सब नूतन मान-तुला था;

फिर भी संयम-व्रत-तप-निष्ठा-
में थी इसकी अतुल प्रतिष्ठा;
यही डोर थी जिसे पकड़कर-
लक्ष्य-शिखर पाते नर चढ़कर;

संयम-व्रत का पालन करते-
तप-प्रकाश से अन्तर भरते;
सब में नया प्रयास जगा था-
मन में दृढ़ विश्वास जगा था;

कहीं शिथिलता तनिक न आती-
धर्म-ध्वजा थी नित फहराती;
धर्म-भाव का पवन सुवासित-
अग-जग तक था सदा प्रवाहित;

आचार्य गणेशी लाल प्रवर ने-
दिया न इसको कभी बिखरने;
जग में शक्ति नयी सरसाई-
हृदय-हृदय में शिखा जगाई;

नया भाव उत्सर्ग-सुमन-सा-
हुआ सुवासित चन्दन-वन-सा;
सबका मन भर गया सुयश से-
आप्यायित था ज्योतित रस से;

विनय-विवेक-विनीत-भाव था-
मन में जाग्रत धर्म-चाव था;
सुदृढ़ हुआ आधार निरामय-
हुए हृदय से जन-जन निर्भय;

थे आचार्य प्रवर मृदुभाषी-
सबकी उन्नति के विश्वासी;
लक्ष्य सिद्ध था जन-जन का हित-
हुआ आत्म-रत-धर्म-समाहित;

सब में ज्ञान सुहर्ष जगाये-
नव उत्कर्ष-शिखर तक लाये;
मधुर-विवेक-समन्वित वाणी-
प्रज्ञामय थी जन कल्याणी;

सुनकर सब आकर्षित होते-
जन-मन सारी कटुता धोते;
जन-जन में आह्लाद जगाते-
चले ज्ञान का दीप जलाते;

यों तो व्यक्ति-व्यक्ति के भव के-
थे अभिलाषी नव उद्भव के;
किन्तु हृदय में चाह जगी थी-
संघ बने दृढ़ दृष्टि लगी थी;

संघ चतुर्विध खिले विहँसकर-
साधु-साधवी रहें पंथ पर;
श्रावक और श्राविका आएँ-
पथ पर जीवन सफल बनाए;

श्रम-साधन है सबका सम्बल-
व्यक्ति-व्यक्ति के अन्तर का बल;
किन्तु यहीं पर अन्त नहीं है-
लक्ष्य अभी तो दूर कहीं है;

जन-जन का नव उद्भव होगा-
ज्योति-शिखर का अनुभव होगा;
इसीलिए संघ सुनिश्चित-
धर्म-भाव तब होता अभिहित;

वचन-करम से किया प्रभावित-
हुए सभी जन मन से भावित;
किया हृदय से सब संचालन-
जन-जन के मन का प्रक्षालन;

तब फिर विमल विहार किए थे-
ग्राम-नगर सब पार किए थे;
ज्योति-शिखा चहुं ओर जगी थी-
धर्म-भावना-लौ सुलगी थी;

धर्म-पंथ अब सुदृढ़ बना था-
सात्विक वन्दनवार तना था;
नयी ज्योति अब जाग रही थी-
विमल साधना धार बही थी;

सब ने नीयम व्रत को साधा-
अपने चपल हृदय को बाँधा;
ज्ञान-ज्योति की शिखा जगाई-
घनी कलिमा स्वयं मिटाई;

वचनामृत में मधुर शक्ति थी-
इनमें अविचल ज्ञान भक्ति थी;
जो भी इनको सुनने आता-
चरण-कमल पर शीश नवाता;

तीर्थंकर के साधन पथ पर-
ये आरूढ़ रहे सत्-रथ पर;
दृढ़ता से व्रत पालन करते-
सब दिन भू पर रहे विचरते;

महाज्योति के नव प्रकाश का-
एक लक्ष्य था नव विकास का;
इस पर ही सब दृष्टि लगी थी-
किरणें चारों ओर जगी थी;

अब तो सब का हृदय मगन था-
नयी दिशा औं नया गगन था;
मुक्ति-गीत अब गूँज रहे थे-
दृग से सात्विक अश्रु बहे थे;

नया प्रकम्पन था जन-जन में-
नयी रोशनी थी जीवन में-
नया-नया था सब उद्भावन-
धर्म-भाव-घन घिरता सावन;

जिससे प्रतिपल वर्षा होती-
मन की कोयल कभी न रोती;
गीत सलोने गुंजित रहते-
आतप में मन कभी न दहते;

शान्त-सुशीतल पवन थिरकता-
मोद-प्रमोद हृदय में भरता;
परमानन्द गगन जीवन में-
प्राप्त सभी कुछ होता क्षण में;

जय तीर्थंकर ! दीया जगा दो-

करुणा का मधुरस बरसा दो;

जन-जन के मन लगे हुए हैं-

चातक से दृग टँगे हुए हैं ! !

अष्टदश पुष्प

वर्तमान के शंखनाद में-

अनहद के नव स्वर-निनाद में;

धरती ने ली है अंगड़ाई-

धर्म-भावना भू पर छाई;

ऊषा की ज्यों किरण उतरकर -
करती पुलकित भूतल अम्बर;
तम का क्रन्दन मिट जाता है-
कण-कण सजकर मुस्काता है;

नीड़-नीड़ से पक्षी आते-
अपना मनहर गीत सुनाते;
मुकुल-वकुल सब खिल जाते हैं-
मधुपों के दल मंडराते हैं;

नयी सुरभि से धरती भरती-
मूर्त्त माधुरी विहंस उतरती;
वैसे ही सब आज सजग है-
सजा-धजा जग का पग-पग है;

श्रमण-धर्म की नयी लहर में-
जाग रहे हैं पुण्य प्रहर में;
सबके सोए भाग जगे हैं-
मानस में अनुराग जगे हैं;

आचार्य पूज्य नानेश प्रवर हैं-
सम्मुख शाश्वत जीवन-स्वर हैं;
कैसे कोई करे वन्दना ?
रुक-रुक जाती मुग्ध प्रार्थना;

शब्द न कुछ भी मिल पाते हैं-
दो दिल हिलकर रह जाते हैं;
उनके आशीर्वचनों से ही-
मन में जागे भाव सनेही;

मन था ज्यों पत्थर का ढोंका-
तरह-तरह का खाता झोंका;
अपनी कोई बात नहीं थी-
कपट कालिमा रात यहीं थी;

दुःख हृदय में कसक रहा था-
भीतर-भीतर मसक रहा था;
दृग पर चादर पड़ी हुई थी-
व्यथा अपरिमित गड़ी हुई थी;

अन्धकार था आगे-आगे-
कैसे कौन कहां पर भागे ?
समझ न कोई कुछ पाता था-
देख-देख मन घबड़ाता था;

वर्षा ऋतु के नभ में जैसे-
काले बादल घिरते वैसे;
भाव-कुभाव सदा जग-जगकर-
करते थे उपघात हृदय पर;

अब तक जो मन बन्द रहा था-
खोज मधुर आनन्द रहा था;
वह आनन्द कि जिससे शीतल-
शान्ति अहर्निश जगती पल-पल;

यह दुनिया तो वड़ी विकट है-
कदम-कदम पर ही संकट है;
कहीं परस्पर द्वेष वढ़ा है-
कहीं मोह का नशा चढ़ा है;

कोई आज न अपनेपन में-
झूम रहे सब स्वप्निल वन में;
कोई बीता काल हेरता-
छूट गया जो उसे टेरता;

सभी तरफ है आपाधापी-
मनुज व्यर्थ का बना प्रलापी;
अपनी सुध-बुध पास नहीं है-
अपने पर विश्वास नहीं है;

उखड़ रहा अस्तित्व पुरातन-
कंटक मय है मार्ग सनातन;
छल-छद्मों के जाल बिछाए-
चलते पथ पर सब भरमाए;

आज व्यग्र है मानव जितना-
कभी नहीं था पागल उतना;
होड़ सभी में लगी हुई है-
आग चतुर्दिक जगी हुई है;

लोभ-मोह की आग प्रबल है-
छीना-झपटी चाह चपल है;
कैसे कोई प्राण बचाए-
धर्म-भाव में हृदय लगाए ?

सोच रहे सब शान्ति चाहिए-
करूणा पूरित कान्ति चाहिए;
मिटे व्यग्रता अब जीवन की-
कलिका विहंसे नन्दन वन की;

राह न कोई भी दिख पाती-
मन की मन में ही रह जाती;
घुट-घुट कर मन तड़प रहा है-
दृग से अविरल अश्रु बहा है;

किन्तु आज है सम्मुख मेरे-
मधुर धर्म के भाव घनेरे;
श्रमण-धर्म है जिसके मन में-
प्राणि-मात्र का हित कण-कण में;

जिसके चरण-कमल पर कितने-
राज-सिंहासन आए झुकने;
सत्य-अहिंसा-दया-धर्म का-
मोल यहां है शुद्ध-कर्म का;

आओ, हम सब शीश नवाएं-
आचार्य प्रवर से आशिष पाएं;
जीवन तभी सफल हो सकता-
कुत्सित भाव हृदय खो सकता;

जय तीर्थंकर ! जय विश्वम्भर !
दया करो जय-जयति जिनेश्वर ! !
चरण-कमल पर विश्व प्रणत है-
जन-जन मन से स्वतः विनत है ! !

उनविंश पुष्प

आतप का अनुमान किरण के-
एक तार से लगता;
वर्तमान के क्षण में ही तो-
सदा भविष्यत् जगता;

जब जैसा होने को होता-
रूप वही खिल जाता;
सब संयोग स्वयं जुटते हैं-
अवसर ऐसा आता;

नियति प्रबल है, प्रतिक्षण सब की-
स्वयं व्यवस्था करती;
दाह निदाघ जले अम्बर में-
मेघावलियां भरतीं;

मेरे भी चरित्र नायक की-
ऐसी ही है गाथा;
प्रबल-प्रकाण्ड ज्ञान का अंकुर-
बचपन में पनपा था;

बालपने में ही चिन्तन की-
रेखा पड़ी दिखाई;
नहीं पिता श्री रहे लड़कपन-
में ही विपदा आई;

कुछ परिवार भार बालक के-
कंधे पर भी आया;
लेकिन पूरी दृढ़ता से ही-
उसने काम चलाया;

सत्य-निष्ठ संकल्प शक्ति की-
दृढ़ता जाग रही थी;
करूणा की निर्मल शुचि धारा-
मन में स्वयं बही थी;

विद्यालय में बाल-कोष पर-
पूरा ध्यान दिया था;
चौर-वृत्ति -परित्याग-ज्ञान-
स्वयं विचार किया था;

कोई वस्तु किसी की जब भी-
कहीं छूट जो जाती;
उसकी पीड़ा से इनको भी-
मन में पीड़ा आती;

जब तक उसको वस्तु न मिलती-
ये अशान्त थे रहते;
औरों की पीड़ा में ये भी-
मर्म वेदना सहते;

संतों का है रूप यही वह-
पर दुख में नित रोता;
औरों का सब क्लेश उसे तो-
अपन जैसा होता;

बचपन से ही रहे झलकते-
संतों के सब लक्षण;
उभर रहा था इनके मन में-
निर्मल ज्ञान विचक्षण;

दृष्टि निरामय स्वयं लगी थी-
परम ज्योति में जगने;
जीव-मात्र के प्रेमामृत में-
हृदय लगा था पगने;

अपने स्वार्थ-भाव से ऊपर-
हृदय जगाए रहते;
अपना समझ सभी प्राणी को-
बात हृदय की कहते;

किसी जीव के प्रति अन्तर में-
द्रोह-दुराव नहीं था;
किसी वस्तु के ग्रहण-ग्राह्य का-
मन में चाव नहीं था;

हृदय सदा निस्संग भाव में-
स्वयं विचरता रहता;
किसी तरह कोई कल्मष का-
भार न मन था सहता;

बालकपन में और जहां सब-
कोई खेल रचाते;
आप सबों से अलग किनारे-
अपना समय बिताते;

चिन्तन की लड़ियों में अविरल-
रहते थे नित खोए;
दुख में पीड़ित देख मनुज को-
कई बार थे रोए;

बाल हृदय में ही करूणा की -
उठने लहर लगी थी;
भावी की उद्बोधन-कामना-
मन में तभी जगी थी;

शान्त चित्र था मन में सबके-
हित की चाह प्रबल थी;
नहीं वहां पर क्षुद्र भावना-
की कोई हलचल थी;

ऐसे में ही एक दिवस जब-
साधु-वचन सुन पाए;
लगा प्रवचनों ने अन्तर में-
नव प्रकाश सरसाए;

वचपन से ही रहे झलकते-
संतों के सब लक्षण;
उभर रहा था इनके मन में-
निर्मल ज्ञान विचक्षण;

दृष्टि निरामय स्वयं लगी थी-
परम ज्योति में जगने;
जीव-मात्र के प्रेमामृत में-
हृदय लगा था पगने;

अपने स्वार्थ-भाव से ऊपर-
हृदय जगाए रहते;
अपना समझ सभी प्राणी को-
बात हृदय की कहते;

किसी जीव के प्रति अन्तर में-
द्रोह-दुराव नहीं था;
किसी वस्तु के ग्रहण-ग्राह्य का-
मन में चाव नहीं था;

हृदय सदा निस्संग भाव में-
स्वयं विचरता रहता;
किसी तरह कोई कल्मष का-
भार न मन था सहता;

बालकपन में और जहां सब-
कोई खेल रचाते;
आप सबों से अलग किनारे-
अपना समय बिताते;

चिन्तन की लड़ियों में अविरल-
रहते थे नित खोए;
दुख में पीड़ित देख मनुज को-
कई बार थे रोए;

बाल हृदय में ही करूणा की -
उठने लहर लगी थी;
भावी की उद्बोधन-कामना-
मन में तभी जगी थी;

शान्त चित्र था मन में सबके-
हित की चाह प्रबल थी;
नहीं वहां पर क्षुद्र भावना-
की कोई हलचल थी;

ऐसे में ही एक दिवस जब-
साधु-वचन सुन पाए;
लगा प्रवचनों ने अन्तर में-
नव प्रकाश सरसाए;

मन से अब बेचैन हुए थे-
परम ज्योति कब पाएं ?
कैसे किस आचार्य शरण में-
मन की प्यास बुझाएं ?

यही प्यास है एक लगन जो-
मन में जब जग जाती;
मन-वांछित दृढ़ राह पथिक को-
अपने ही मिल जाती;

हृदय तभी मंदिर बन जाता-
नयी ज्योति मुस्काती;
जनम-जनम की जमी तमिस्ता-
अपने ही मिट जाती;

जयति जिनेश्वर ! पंथ तुम्हीं ने-
सबको है दिखलाया;
धरती के इस पुण्य-पुरुष-
मानव को सदा जगाया;

जय तीर्थंकर चरण कमल पर-
जन-जन शीश झुकाते;
तेरे वचनामृत से अपना-
हृदय पवित्र बनाते ! !

विंश पुष्प

यही सत्य है ज्योति प्राण के-
अन्तरतर से आती;
वाह्य ज्ञान के मृत पत्थर में-
कभी नहीं दिख पाती;

जो है खोजी, उसने पहले-
अपने मन को साधा;
वाह्य ज्ञान का सकल बवन्डर-
बनता निर्मम बाधा;

खोजी जन तो अल्प-आयु से-
इसी पंथ पर चलता;
वह घनसार बना ज्वाला में-
गंध लुटाता गलता;

उसके मन को शान्ति न देता-
कोई भी विद्यालय;
उसको कोई बता न पाता-
जीवन का क्या आशय ?

मेरे इस चरित्र नायक की-
यही दशा थी प्रतिपल;
किसी पाठशाला में जाकर-
तृप्ति न पाई अविकल;

छोड़ दिया सब पढ़ना-लिखना-
दुनिया जिसमें रत है;
जिसको पढ़कर भू का मानव-
इतना अब उद्धत है;

आज जगत में भीषण क्रन्दन-
रोदन और जलन है;
कदम-कदम पर महानाश का-
होता जो नर्त्तन है;

लूट-खसोट मची है, घर-घर-
हाहाकार मचा है;
महाअतल तक गिरने से अब-
कोई नहीं बचा है;

इसका कारण यही कि हमसे-
आत्मा छूट गयी है;
हम आगे, आधार-शिला ही-
पीछे छूट गयी है;

आत्मा ही है सत्य कि जिस पर-
जीवन निर्मित होता;
इसको खोकर मानव जग में-
अपना सर्वस खोता;

आज मनुज आत्मा का खोकर-
पागल-सा है फिरता;
जिसके कारण दुर्दिन का घन-
सिर पर रहता घिरता;

जो कुछ दिखता जग में उससे-
आत्मा बहुत अलग है;
वह तो महा शून्य में उड़ता-
कोई मुक्त विहग है;

इस पक्षी को कोई बन्धन-
कुछ स्वीकार नहीं है;
इसको जड़ दुनिया से क्षणभर-
को भी प्यार नहीं है;

जग में जो है सब नश्वर है-
मृत्युमुखी अवधाता;
कमल-पत्र पर तुहिन-कणों-सा-
क्षणभर में ढुल जाता;

तन भी वही कि जिसका प्रतिक्षण-
होता है परिवर्तन;
इसके रोम-रोम पर गुंजित-
महाकाल का गर्जन;

आत्मा ही है एक कि जिसका-
अन्त नहीं हो पाता;
आत्मजयी तो महाप्रलय में-
चलता है मुस्काता;

दुनिया के किञ्चित भी बन्धन-
बांध न उसको पाते;
विघ्नों के पत्थर भी उसके-
पथ पर फूल खिलाते;

मूल यही है आत्मा का ही-
पाठ हृदय में लाएं;
परम तत्त्व है यही, इसी को-
मन से सब अपनाएं;

तभी हृदय की जलन मिटेगी-
परमानन्द खिलेगा;
सत्य-ज्ञान की विमल शिखा से-
मानव मन भर लेगा;

आत्मा का अन्वेषक जग में-
है अनन्त-पथ-राही;
उसके भौतिक तत्त्वों की तो-
होती सदा तबाही;

वाल्यकाल में ही नाना जी-
साधु-मार्ग पर निकले;
भौतिकता का त्याग-विचारा-
यही काम है पहले;

छोड़ चले घर-बार हृदय में-
नूतन ज्योति जगाए;
परम तत्व-उस मोक्ष विमल में-
अपना ध्यान लगाए;

जयति जिनेश्वर ! दिव्य ज्ञान की-
ज्योति जगानेवाले !
एक तुम्हीं हो, जग को सच्ची-
राह दिखाने वाले ! !

एकबिंश पुष्प

सृष्टि अनादि अनन्त प्रवाहित-
पल-पल रूप वदलती;
वाह्याकार अनामिल, इसकी-
सुषमा एक न रहती;

मिटनेवाला तत्त्व धरा पर-
होता है परिवर्तित;
लहर-लहरकर गिरनेवाली-
होती है आवर्तित;

किन्तु तत्त्व जो अक्षय, इसके-
क्षय का नाम नहीं है;
वही जहां है, परिवर्तन का
इसमें काम नहीं है;

दृश्य जगत जो दिखता उसका-
एक रूप कब रहता ?
अपने बनने-मिटने का वह-
घात अहर्निश सहता;

परिवर्तन है, इसीलिए तो-
मिटना निश्चय नर का;
एक निमिष में मिट जाता है-
वैभव जीवन भर का;

लेकिन मानव के भीतर जो-
आत्मा है कहलाती;
वही एक है वस्तु मनुज की-
नष्ट न जो हो पाती;

यही सत्य है होता जिसका-
कभी नहीं परिवर्तन;
कोई इसको भेद न पाता-
बांध न पाते बन्धन;

इसके ही अन्वेषक जग में-
सत्य-व्रती कहलाते;
वे ही जन है, अपने श्रम से-
भू को सुखद बनाते;

आत्मा ही है सत्य, वही है-
परम ज्योति की धारक;
आत्म-जयी ही जो पाता है-
जन-जन का उद्धारक;

इसी सत्य के अन्वेषण में-
जनम-जनम कट जाते;
पड़े गर्त में मानव तम से-
बाहर निकल न पाते;

जिसने उसको पाया, मानो-
सार्थक मनुज वही है;
जन्म कृतार्थ उसी का भू पर-
मानव वही सही है;

अन्धकार है कदम-कदम पर-
मानव तड़प रहा है;
दुर्दिन के सब उत्पातों का-
उसने वार सहा है;

इससे बचना है तो मन को-
मानव स्वयं जगाए;
अपने श्रम से ही इस जग को-
जगकर सुखद बनाए;

एक यही है मार्ग कि जिससे-
मानवता बच सकती;
परम शान्ति की ज्योति यहीं से-
रहती सदा छिटकती;

एक उपाय यही है जिससे-
मार्ग प्रशस्त रहेगा;
आत्म रमण करके ही मानव-
सब कुछ प्राप्त करेगा;

इसी मार्ग का पालन तो है-
धर्म-भाव अपनाना;
आत्मा का है यही निरामय-
विश्वात्मा हो जाना;

श्रमण-मार्ग है यही कि जिस पर-
मानव सब कुछ पाता;
स्वयं जाग कर औरों को भी-
रहता सदा जगाता;

जीवन सुखद बनाता आया-
इस पथ पर नर चलकर;
तम की अंध गुफा में, खुद ही-
ज्योति-शिखा-सा जलकर;

यही सूत्र है जिससे मानव-
परम लक्ष्य को पाता;
अपने श्रम से अपने ही-
देवत्व प्राप्त कर जाता;

देवों से भी ऊंचे पद की-
शक्ति मनुज में रहती;
यही सत्य है, बात इसी की-
अगम नियति तक करती;

इसी शक्ति को सदा जगाए-
रखता धर्म-प्रवण है;
श्रमण-मार्ग ही परम ज्योति का-
अनुपम मधुर वरण है;

जय तीर्थंकर ! जयति जिनेश्वर !
तुमने मार्ग बताया;
भटक रहे प्राणी का जीवन-
तुमने सुखद बनाया !

आज उसी की दिव्य विभा है-
यहां धरा पर छाई;
परम पूज्य नानेश रूप में-
ज्योति वही है आई;

उसी ज्योति के वन्दन पूजन-
में हम हृदय रमाएं;
पूज्य-पाद आचार्य देव को-
अपनी विनय सुनाएं ! !

द्वि-बिंश पुष्प

परम विराट सृष्टि है, जिसमें-
मानव एक कड़ी है;
जड़-चेतन सब प्राणी से ही-
उसकी शक्ति बड़ी है;

किन्तु मनुज है अन्धकार में-
जान नहीं कुछ पाता;
जन्म मरण के घेरे में ही-
पड़ा-पड़ा अकुलाता;

जय तीर्थंकर ! तुमने ही तो-
नर को सदा जगाया;
उसकी गोपन अमित शक्ति का-
अनुभव उसे कराया;

श्रमण-धर्म अपना कर जग से-
प्रथम सुपरिचित हो लें;
स्वास्ति वचन की नई विभा में-
जगकर आंखें खोलें;

तभी समझ हम पाएंगे यह-
जग है मिटने वाला;
उगा प्रखर मार्तण्ड स्वयं है-
आज डूबने वाला;

इसी अनित्य भाव का धारण-
अनुभव से हो धारित;
तभी जगत में हो सकता है-
सुगम पंथ सम्भावित;

और यहां फिर अशरण रह कर-
अपना मार्ग बनाएं;
अपने पौरूष की ज्वाला को-
जगकर स्वयं जगाएं;

कोई अन्य किसी की नैया-
पार नहीं कर सकता;
अपना ही कर्तव्य हृदय में-
प्रखर ज्योति भर सकता;

बुझे दिये को जले दिये से-
उठकर स्वयं लगाएं;
तम के गहन पटल को अपने-
कर से स्वयं हटाएं;

तभी प्रकाश खिलेगा भू पर-
हृदय कमल खिल सकता;
परम ज्योति की खुली विभा से-
नर का दृग मिल सकता;

यहां सदा अन्यत्व भाव से-
जीवन जीना होगा;
एकान्त-कक्ष में रहकर अपना-
कंचुक सीना होगा;

मित्र-शत्रु या नाते-रिश्ते-
की है जो भी डोरी;
व्यर्थ सभी कुछ काम न देंगे-
सब हैं पुस्तक कोरी;

इसीलिए है आवश्यक हम-
ममता नहीं जगाएं;
अपने मन में मेरेपन का-
भाव न तिल भर लाएं;

यही भावना जगकर अपने-
जब तन तक है आती;
मृत्यु मुखी तन के प्रति जाग्रत-
चाह छूट है जाती;

और वहां तब एक चेतना-
जगती है इस मन में;
तन से मन है भिन्न, मात्र वह-
साक्षी है इस तन में;

अहंकार मिट जाता अपना-
नव प्रकाश-सा जगता;
संस्कारों का घना आवरण-
अपने हटने लगता;

जनम-जनम से मन पर कितने-
भाव अभी हैं छाए;
कितनी राहों से चलकर हम-
आज यहां तक आए;

पथ पर कितने कंटक रोड़े-
कितनी बाधा आई;
वन उपवन में कली-कली तक-
खिल-खिलकर मुस्काई;

कहीं हृदय में ममता जागी-
स्नेह कहीं लहराया;
और कहीं पर मन में भीषण-
था विद्रोह समाया;

जो अनुकूल रहा उस पर तो-
मधुर चांदनी छाई;
किन्तु विरोधी सब तत्त्वों से-
ठानी कठिन लड़ाई;

जनम-जनम से यही हाल तो-
अब तक चलता आया;
आशा और निराशा में ही-
अब तक मन भरमाया;

तीर्थंकर ने यही बताया-
सारे बन्धन तोड़ो;
परम ज्योति से ही अब केवल-
अपना नाता जोड़ो;

यही सत्य है इससे मन को-
परम शान्ति मिल सकती;
जीवन के घन अन्धकार में-
ज्योति विमल खिल सकती;

जयति जिनेश्वर ! तुम्हीं एक हो-
जन-जन के सुख दाता;
तिमिर-ग्रस्त, भय-ग्रस्त मनुज है-
श्रृद्धा-सुमन चढ़ाता ! !

त्रिंबिश पुष्प

श्रवण-धर्म है यही कि जिससे-
मन का दीपक जलता;
परम ज्योति बन जाने को ही-
जगकर प्राण ललकता;

सत्यरूप में ही दुनिया का-
जब स्वरूप जग पड़ता;
मोह-विटप का पत्र स्वयं ही-
वृन्त-वृन्त से झड़ता;

आत्मा तन से सदा भिन्न है-
जब अनुभव में आता;
तभी जीव निस्संग भाव से-
सत्य-धर्म अपनाता;

जग भण्डार अशुचि का इसमें-
मिश्रण ही मिश्रण है;
भाव-कुभाव मिले जन-जन के-
जीवन के कण-कण हैं;

सत्य यही है इस दुनिया को-
निज स्वरूप में जानो;
साक्षी होकर, भिन्न जगत से-
अपने को पहचानो;

तभी हृदय पर संस्कारों की-
मैल नहीं जम सकती;
आत्म-रमण में लीन हृदय की-
चंचल गति थम सकती;

धर्म-मार्ग पर फूट रही जो-
सत्य किरण की आभा;
उनका ही संवरण उचित है-
जगने दो रत्नाभा;

दूपित वायु-कणों को अपने-
अन्तर में मत लेना;
सजग रहो, जब आएं, उनका-
मार्ग रूद्ध कर देना;

हम बैठे हैं लेकिन दुनिया-
प्रतिपल रहती चलती;
फूल खिलाती पथ पर कोई-
दुल्हन नयी निकलती;

कहीं मेह की छटा देखकर-
मोर नाचने लगता;
कहीं किसी अमराई में भी-
कोकिल का स्वर जगता;

होने दो सब, किन्तु हृदय को-
साथ न उनके बांधो;
प्रतिपल तुम निस्संग भाव से-
साधन-व्रत आराधो;

यही परम आवश्यक है तुम-
सदा जागते रहना;
अपने सौम्य सुरम्य हृदय पर-
भार न कोई सहना;

और यही निर्जरा भाव का-
करना है आराधन;
छूट रहा जो उसे छोड़ना-
ही है मुख्य प्रसाधन;

तरह-तरह की यादों में ही-
प्राण झूलता रहता;
सुख-दुख के झोकों पर अविरल-
रहता सदा मचलता;

इनसे विरति जगाकर अपने-
धर्म-भाव में जागो;
यही सत्य है, इतर वस्तु से-
प्राण बचाओ भागो;

धर्म-जीव का निज स्वभाव है-
सीखो उसमें रहना;
निज स्वभाव में ही सुमनों का-
होता मुग्ध महकना;

धर्म-मार्ग पर ही जगती है-
सात्विक बोधि हृदय में;
जिससे अपने जग जाता है-
मन समाधि की लय में;

यही नियति, कैवल्य धरा पर-
जिसे भूल हम आए;
भौतिकता के गहन तिमिर में-
जिसको हैं बिसराए;

समय पुकार रहा है मानव-
जागो ध्यान लगाओ;
आत्म-ज्योति में जगकर अपने-
सब में ज्योति जगाओ;

जय तीर्थंकर ! जयति जिनेश्वर
सदा तुम्हारी जय हो !
तेरी करूणा-कण का वर्षण-
भूतल पर अक्षय हो ! !

चतुर्बिंश पुष्प

श्रमण-धर्म का राग यही है-
जागो और जगाओ;
जन-मन में नव जोत जगाकर-
सब का दुःख मिटाओ;

रहे न कोई क्षणभर कातर-
दुःख न मन पर झेले;
साक्ष्य-भाव के साथ सृष्टि में-
सम्यक मन से खेले

अपने और पराये के जब-
भाव न मन में रहते;
परमानन्द वृत्ति में जगकर-
मानव तभी विचरते;

ऐसे में ही जन-जन का मन-
अपने मन-से जुड़ता;
आत्म-सूत्र से जुड़कर पंछी-
मुक्त गगन में उड़ता;

इसीलिए तो है विहार की-
महिमा अद्‌भुत न्यारी;
फूलों की धड़कन तक सुनते-
जाकर क्यारी-क्यारी;

सूखी जलती परती धरती-
या हो रेत सुलगती;
कांटे तीखे शीश उठाये-
या हो बर्फ पिघलती;

सभी जगह पर विचरण करते-
पूज्यपाद हैं जाते;
धर्म-भाव के गहन मर्म सब-
जन-जन को बतलाते;

जब भी होता जहां आगमन-
लहर खुशी की छाती;
महामहोत्सव के उस क्षण में-
दिशा-दिशा मुस्काती;

पथ का कोई बन्धन अब तक-
रोक न पग को पाया;
नयी लहर से जन-मानस है-
सागर-सा लहराया;

फूल विहंसकर खिल पड़ते हैं-
कांटे भी शरमाते;
पत्थर भी सुगबुगा उठे हैं-
इनके आते-आते;

नई रोशनी दिग-दिगन्त तक-
अपने ही खिल जाती;
एक अनोखी धर्म-भावना-
जीवन में लहराती;

वन-प्रान्तर के जीव अनोखे-
गीत खुशी के गाते;
सौरभ लेकर कली-कली से-
पवन थिरकते आते;

एक परम आभा-सी भू पर-
अविरल छाई रहती;
मुग्ध मेदिनी के आनन पर-
धर्म-जुन्हाई रहती;

यह विहार का क्षण भूतल पर-
महापर्व-सा सजता;
व्यक्ति-व्यक्ति के श्रवण-रन्ध्र से-
साज धर्म का बजता;

होता चातुर्मास जहां भी-
पुण्य वहां पर जगता;
धर्म-विजय का केतु वहां के-
नभ में सदा फहरता;

वर्षा के ये चार माह तो-
बड़े अनोखे होते;
झरतीं जल बूंदों से प्राणी-
दोह हृदय के धोते;

तरू-तरू पल्लव सिहर-सिहर कर
कजली धुन में गाते;
मरू के तरू के सूखे पत्ते-
लगते रस सरसाते;

सावन-भादों खुलकर बरसे-
कृषक हृदय लहराए;
यही कामना, शस्य श्यामला-
धरती रत्न लहाए;

मेह गगने में घिरे धरा पर-
मन मयूर हर्षाए;
जय तीर्थंकर ! जयति जिनेश्वर !
जड़ चेतन दुहराए;

बीकानेर पुण्यमय धरती-
वीरों की है गाथा;
चातुर्मास यहां गुरूवर का-
एक बार बीता था;

अब तक उसकी याद यहां का-
कण-कण है दुहराता;
सूखी रेत पुलक उठती है-
बच्चा-बच्चा गाता;

यह भू खण्ड जलन का मारा-
रहता सब दिन तपता;
जितना लू से दहता, उतना-
शीत माह में कंपता;

चैन नहीं है सभी विकल हैं-
दुख से समय बिताते;
विन बरसे ही मेह अधिकतर-
लौट यहां से जाते;

पूज्य प्रवर का हुआ पदार्पण-
तभी विहंस हम पाए;
प्रभु की चरण-शरण में आए-
अपना शीश झुकाए;

जय तीर्थंकर ! जीवोद्धारक !
जयति जिनेश्वर ! आओ;
तड़प रहे हैं प्राण हमारे-
अपना हमें बनाओ ! !

पंचविंश पुष्प

बड़ा भाग्य है सर्वसदा का-
युगाचार्य हैं आए;
स्वागत की इस पुण्य घड़ी में-
कण-कण हैं लहराए;

आज सवेरे से ही ऊषा-
सज-धज कर है आई;
सुमनों के अनुराग-राग से-
अचला है सरसाई;

सिकता के कण पुलक उठे हैं-
पवन हिलोरें लेता;
खग-दल के नव कलरव में भी-
गीत सुनाई देता;

नयन-नयन हैं आज विहंसते-
आनन पर अरूणाई;
श्रवण-रन्ध्र में लगता जैसे-
बजती है शहनाई;

दिग्-दिगन्त तक आज व्याप्त है-
एक मनोरम उत्सव;
दिशा-दिशा में छिटक रही है-
प्रभा समुज्जवल अभिनव;

यह वन्दन-अभिनन्दन है हम-
मन से खुशी मनाते;
भावाकुल रोमाञ्चित क्षण में-
अधर न खुलने पाते;

कैसे वन्दन गाएं गुरूवर !
कैसे गीत सुनाएं ?
हम अभिभूत भाव से विह्वल-
कैसे तुझ तक आएं ?

तुम करूणाकर ! दया करो अब-
मन का तिमिर मिटाओ;
पाद-पद्म पर शीश नवाते-
अपना हमें बनाओ;

ज्ञात हमें है, तुमने कितनों-
को है पार लगाया;
आसमान तक केतु-धर्म का-
तुमने ही फहराया;

तुम से जितने साधु-साध्वी-
दीक्षित हैं इस भू पर;
पहले उतने नहीं हुए थे-
श्रमण-पंथ पर तत्पर;

कितनों का उद्धार हुआ है-
कौन भला बतलाए ?
तुम से प्रेरित होकर अनगिन-
व्यसन-मुक्त हो आए !

दीन-हीन अस्पृश्य जनों को-
तुमने राह बताई;
तम में भटक रहे जीवों को-
जीवन-ज्योति दिखाई;

धर्मपाल प्रतिबोधक तुम हो-
समय-काल अभिज्ञाता;
अज्ञ-जनों को विज्ञ बनाए-
तुमने ही जन-त्राता;

दिव्य समीक्षण ध्यान विमल के-
योगी धर्म-प्रचारक;
आज धरा पर एक तुम्हीं हो-
जन-जन के उद्धारक;

जन समुद्र जो उमड़ रहा है-
वही आज बतलाते;
श्री गुरू-पद में मुक्ति निहित है-
त्राण सभी जन पाते;

वन्दन-अर्चन की यह बेला-
रहे सदा सुखदायी;
जय तीर्थंकर ! तेरी महिमा-
वसुधा पर लहरायी;

ज्ञान-शिरोमणि ! श्रमण शिरोमणि
तुम हो पावन पोषक;
आज तुम्हीं हो धर्म-मार्ग के-
सत्य-ज्योति उद्घोषक;

तुम विरक्त-मूर्धन्य-निरामय-
हो निर्मोही मन-से;
फिर भी ओझल नहीं रहे हम-
तेरे दिव्य नयन-से;

यही प्रार्थना है अब गुरूवर !
सब को पार लगाओ;
मन पर तम का घना आवरण-
जल्दी दूर हटाओ;

हे गुरू- पुंगव ! हम सब तेरी-
चरण-शरण में आए;
दीन-हीन हम महा अकिंचन-
भेंट न कुछ ला पाए;

पाप-पुण्य औं राग-द्वेष की-
ठठरी गठरी भारी;
भेंट वही करता हूं गुरूवर-
एक यही लाचारी;

निस्पृह होकर, अपनेपन को-
चरणों पर हूं धरता;
मेरा सर्वस यही मनोषी-
इसे समर्पित करता;

जय तीर्थंकर ! जयति जिनेश्वर !
जग-जीवन के दाता !
एक तुम्हीं हो आज विश्व में-
जय-जय हे जग त्राता ! !

